मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 146 ● वर्ष 15, अंक 10 ● जनवरी 2026 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

गिग वर्कर्स की हड़ताल और आगे के संघर्ष का रास्ता 5

व्ला. इ. लेनिन का महत्वपूर्ण लेख हड़तालों के बारे में 11

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 13

केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों से एक बार फिर अपील

एकदिनी रस्मी हड़तालों से न कुछ हासिल हुआ है न हासिल होगा!

मज़दूर-विरोधी लेबर कोड वापस लेने पर मोदी सरकार को बाध्य करने के लिए

देशव्यापी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करें!

सम्पादकीय अग्रलेख

हमने 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक में भी लिखा था कि मोदी-शाह निज़ाम द्वारा देश के मज़दूरों पर थोपे गये अन्यायपूर्ण नये लेबर कोडों को वापस लेने के लिए मजबूर करने का एक ही रास्ता है: **देशव्यापी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल।** इसमें संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र, दोनों के ही व्यापक मज़दूर जनसमुदायों को शामिल करना होगा। लेकिन इसमें कोई दो-राय नहीं कि इसमें संख्या में कम होने के बावजूद संगठित क्षेत्र के मज़दूरों और उनकी ट्रेड यूनियनों की विशेष भूमिका होगी। पूँजीवादी व्यवस्था जिन अंगों-उपांगों से काम करती है, उसमें रेलवे, डाक व टेलीग्राफ़, सड़क परिवहन, बैंक, बीमा व तमाम भारी, शिपिंग, संचार, आधारभूत, इंजीनियरिंग, रासायनिक उद्योगों की सबसे अहम भूमिका होती है। इन उद्योगों में काम करने वाली मज़दूर आबादी आज निश्चित तौर पर कुल मज़दूर आबादी का महज़ 12-15 फ़ीसदी ही बनती है। लेकिन रणनीतिक तौर पर अर्थव्यवस्था के इन सेक्टरों की अहमियत को समझना कोई मुश्किल काम नहीं है। इन सेक्टरों में काम का रुकना, मतलब पूँजीवादी व्यवस्था के राज्य-उपकरण का रुक जाना और नतीजतन समूची मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था का ठप्प पड़ जाना। इन सभी सेक्टरों को मज़दूर व कर्मचारी अपनी मेहनत के बल पर चलाते हैं। इन्हें चलाने के लिए धन्नासेठों की औलादें नहीं आतीं। वे तो विदेशों में गुलछर्रे उड़ाती हैं, या देश के भीतर ही बड़े-बड़े सरकारी पदों पर विराजमान होती हैं, या फिर सरकारी सहायता से देश की जल-जंगल-ज़मीन से जनता को बेदख़ल कर लूट-पाट कर रही होती हैं! लेकिन अब इन्हीं धन्नासेठों की मुनाफ़े की दर को बढ़ाने के लिए दमनकारी-अन्यायकारी नयी श्रम संहिताओं को मोदी-शाह सरकार लेकर आयी है। तो ऐसे में मज़दूरों को अपनी शक्ति के प्रदर्शन की आवश्यकता है। और आज के हालात में केवल एक क़दम ही कारगर हो सकता है: अनिश्चितकालीन आम हड़ताल। और विशेष तौर पर संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को इसमें पहल लेनी होगी और अगुवाई करनी होगी। केवल इसके ज़रिये ही आज मोदी-शाह की फ़ासीवादी सरकार को अन्यायपूर्ण लेबर कोड्स को वापस लेने के लिए त्वरित गति से बाध्य किया जा सकता है।

पिछले एक महीने के दौरान पूरे देश में तमाम क्रान्तिकारी मज़दूर संगठनों व यूनियनों द्वारा इस सन्देश को संगठित क्षेत्र के हज़ारों मज़दूरों तक पहुँचाया गया है और अभी भी पहुँचाया जा रहा है। तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के स्थानीय, राज्य-स्तरीय और उससे ऊपर के नेतृत्व से मिलकर तमाम स्वतन्त्र यूनियनों व क्रान्तिकारी मज़दूर संगठनों ने उन्हें अपील-पत्र सौंपा है। इसमें उनसे अपील की गयी है कि लेबर कोड्स को वापस करवाने के लिए देशव्यापी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करें। उन्हें इस हड़ताल में तमाम स्वतन्त्र यूनियनों

(पेज 8 पर जारी)

मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था, फ़ासिस्ट सरकार और पानी में फैलता ज़हर

● **प्रसेन**

अभी हाल ही में मध्यप्रदेश के इन्दौर शहर के भागीरथपुरा इलाक़े में दूषित पानी पीने से 1400 से अधिक लोग डायरिया के चपेट में आ गये। इसमें 17 से अधिक लोगों की मृत्यु ही गयी। सैकड़ों लोग अस्पताल में भर्ती किये गए। इस भयानक घटना के तत्काल बाद ही गुजरात में इसी तरह की घटना घटी जिसमें 10 से अधिक लोगों की मृत्यु हो गयी। इसके बाद योगी के "उत्तम प्रदेश" की आर्थिक राजधानी कहे जाने वाले गौतमबुद्ध नगर के ग्रेटर नोएडा में 8 जनवरी को दूषित पानी पीने से क़रीब 40 लोग बीमार पड़ गये। उसके दो दिन पहले भी ग्रेटर नोएडा के ही डेल्टा वन सेक्टर में गन्दा पानी पीने से करीब 20 लोग बीमार पड़ गए थे। सोचने वाली बात यह है कि इन्दौर को देश का सबसे स्वच्छ शहर घोषित किया गया था और गुजरात को विकास के मॉडल के रूप में। हालाँकि यह सब जानते हैं कि ये सर्टिफिकेट फ़ासीवादी भाजपा ने ही खुद को दिया था और पूँजीवादी मीडिया ने जनता में इस झूठ को सच बनाकर फैलाया था। दूषित पानी से होने वाली ये मौतें केवल प्रशासकीय लापरवाही और किसी समय-विशेष में होने वाली मौतें नहीं हैं बल्कि मुट्ठी भर लुटेरों के मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था के हाथों होने वाली नियमित बर्बर हत्याएँ हैं जो कि फ़ासीवादी भाजपा के दौर में तेज़ रफ़्तार से की जा रही है।

पूँजीवादी व्यवस्था आज उस मुकाम पर पहुँच गयी है जहाँ वह न केवल मेहनतकश आबादी की श्रमशक्ति को बेरहमी से लूट रही है, उन्हें बेरोज़गारी, महँगाई की सौगात दे रही है अपितु पूरी प्रकृति को ही विनाश की ओर तेज़ी से ले जा रही है। मेहनतकश आबादी न केवल पूँजीपतियों द्वारा मेहनत की लूट का शिकार है बल्कि पूँजीपतियों के मुनाफ़े की हवस से आने वाली प्राकृतिक आपदा-विपदा को सबसे अधिक झेलने के लिए बाध्य है। इसलिए मेहनतकश आबादी को यह जानना बेहद ज़रूरी है कि इन्दौर, गाँधीनगर जैसी घटनाएँ क्यों हो रही हैं? ट्रिपल इंजन की फ़ासीवादी भाजपा सरकार की इसमें क्या भूमिका रही है? और कि आखिरकार लोगों को पानी की जगह ज़हर कौन पिला रहा है?

देश के विभिन्न शहरों (और अब गाँवों में भी) की तरह इन्दौर में भी लोग लम्बे समय से प्रदूषित पानी पीने के लिए बाध्य थे। हेपेटाइटिस, किडनी की समस्या, टायफायड, डायरिया जैसी तरह-तरह की बीमारियों के शिकार बन रहे थे। लोग इसकी कई साल से शिकायत कर रहे थे। मज़ेदार बात तो यह है कि इन्दौर नगर निगम अपने कुल बजट का लगभग 25 से 30 प्रतिशत हिस्सा पानी और स्वच्छता पर ख़र्च करता है। यह ख़र्च 2021-22 में 1,680 करोड़ रुपये से बढ़कर 2025-26 में प्रस्तावित

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मज़दूर की ज़िन्दगी इतनी सस्ती क्यों?

आजकल अख़बारों में आये दिन किसी न किसी शहर के कारख़ाने में आग लगने, बिल्डिंग गिरने या विस्फोट होने से मज़दूरों की मौत की ख़बरें आती रहती हैं। कहीं 10-12, तो कहीं दर्जनों मज़दूर मारे जाते हैं, तो कहीं मरने वालों की असली संख्या का पता ही नहीं चल पाता।

आज ऐसी ही एक घटना की ख़बर देखकर मुझे याद आया जब मैं काम करने दिल्ली आया था।

मैं मानेसर में एक गारमेंट फ़ैक्टरी में पीस रेट पर सिलाई का काम करता था। वैसे तो गुड़गाँव और उसके आसपास गारमेंट के सैकड़ों कारखाने हैं, जिनमें लाखों मज़दूर काम करते हैं।

मेरी फ़ैक्टरी में वाशिंग डिपार्टमेंट में काम करने वाले एक मज़दूर की मौत हो गयी जो कि बिहार का रहने वाला था।

काम की परिस्थितियाँ ही उस जगह की कुछ ऐसी हैं कि वहाँ काम करने वाला हर मज़दूर तिल-तिल कर मौत के मुँह में जा रहा था। चार मंज़िला इमारत थी जिसमें करीब 800 तक मज़दूर काम करते थे।

सबसे नीचे बेसमेंट में धुलाई डिपार्ट है जिसमें केमिकल व भाप की वजह से हर वक्त एक अजीब सी गन्ध् आती रहती है। मैं तो एक बार सेकेण्ड फ्लोर से बेसमेंट गया तो पाँच मिनट में मेरी साँस फूलने लगी। और मैं जल्दी से बाहर को भागा।

उस मज़दूर की मौत का कारण भी यही घुटन भरी परिस्थितियाँ थी। बस उसकी मौत फैक्टरी में न होकर उसके कमरे पर हुई। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में साफ़ आया कि फेफड़ों में सूजन व गर्दा की वजह से वह मरा।

उसकी मौत की ख़बर उसके घरवालों को दी गयी और उसके घर वाले दौड़े-दौड़े बिहार से गुड़गाँव आये। उसकी माँ ने मौत के मुआवज़े के लिए बहुत दौड़ लगायी मगर कम्पनी मैनजमेंट को ज़रा भी तरस नहीं आया। उसकी माँ ने कम्पनी मैनेजेण्ट से अपील की और पुलिस से गुहार लगायी। कम्पनी में पुलिस आयी भी मगर कोई कुछ भी नहीं बोला और कोई सुराग भी हाथ नहीं लगा। क्योंकि उसकी मौत के अगले दिन ही उसकी हाज़िरी रजिस्टर से सात दिन की उपस्थिति ग़ायब कर दी गयी।

और बहुत ही सख़्ती के साथ मैनेजर ने अपने आफ़िस में लाइन मास्टरों, सुपरवाइज़रों, ठेकेदारों से लेकर सिक्योरिटी अफसरों तक को यह हिदायत दे दी कि अगर उसकी मौत के बारे में किसी ने उसके पक्ष में एक बात भी कही तो उसके लिए इस कम्पनी से बुरा कोई नहीं होगा। और इस तरह ऊपर से लेकर नीचे एक-एक हेल्पर व सभी कर्मचारियों तक मैनेजर की यह चेतावनी पहुँच गयी। और पूरी कम्पनी से कोई कुछ नहीं बोला।

उसकी माँ सात दिन तक गेट के बाहर आती रही, लगातार रोती रही। मगर हम मज़दूरों में कोई यूनियन न होने की वजह से हम सब मजबूर थे। और आज मैं भी यह सोच रहा हूँ कि मेरे साथ भी अगर कोई हादसा होगा तो मेरे घरवालों के साथ भी यही हाल होगा।

अगर हम एकजुट नहीं होंगे और एक-दूसरे के साथ खड़े नहीं होंगे, इसी तरह कायरों की तरह जीते रहेंगे – केवल महीने भर के वेतन के लिए अपनी ज़िन्दगी दाँव पर लगाते रहेंगे तो हमारी ज़िन्दगी ऐसे ही सस्ती बनी रहेगी।

– एक मज़दूर, गुड़गाँव

मुझे सीतापुर जाने वाली ट्रेन में कुछ नौजवान मज़दूर बिगुल अख़बार बेचते हुए मिले थे। उनकी बाते सुनकर मुझे हैरानी हुई और ख़ुशी भी हुई कि आज के दौर में भी इतने साहस के साथ लोग आवाज़ उटा रहे हैं। मुझे यह अख़बार बहुत अच्छा लगा। देश में इतने मीडिया और अख़ाबर हैं लेकिन मज़दूरों और ग़रीबों की बात कोई नहीं करता है। जात-धर्म के नाम पर लड़ाने की राजनीति की कलई भी आपने अच्छी तरह खोली है। मैं इस अख़बार को आगे भी मँगाकर अपने गाँव में पढ़वाऊँगा।

– मोहम्मद ज़हूर
लखीमपुर

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं।
नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) – 300/- (रजिस्टर्ड डाक से) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

कुलदीप सिंह सेंगर को ज़मानत : न्यायपालिका में फ़ासिस्ट घुसपैठ और भाजपा राज में बलात्कारियों व अपराधियों को सत्ता के संरक्षण का एक और उदाहरण

● अजीत

उन्नाव बलात्कार मामले में 23 दिसम्बर 2025 को दिल्ली हाईकोर्ट की एक बेंच ने मुख्य आरोपी व पूर्व भाजपा विधायक कुलदीप सिंह सेंगर की सज़ा को निलम्बित कर दिया। हालाँकि व्यापक विरोध प्रदर्शन के बाद सुप्रीम कोर्ट ने हस्तक्षेप करते हुए दिल्ली हाईकोर्ट के फ़ैसले पर रोक लगाते हुए कुलदीप सिंह सेंगर की सज़ा को बरक़रार रखा है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय के लिए अपने बचे-खुचे सम्मान की रक्षा के लिए यह अनिवार्य था। ज्ञात हो कि यह मामला 2017 का है और इसके मुख्य अपराधी सेंगर को सज़ा 2019 में मिली थी। पीड़िता को न्याय की लड़ाई लड़ते हुए अपने परिवार के सदस्यों को खोना पड़ा। 2018 एवं 2019 में उन्नाव की पीड़िता को न्याय दिलाने हेतु पूरे देश में विरोध प्रदर्शन हुआ था तब जाकर सेंगर को सज़ा मिली थी।

23 दिसम्बर को दिल्ली हाईकोर्ट द्वारा सेंगर की सज़ा निलम्बित करने का फ़ैसला कुछ बातों की ओर इशारा करता है जिनपर ध्यान देने की ज़रूरत है।

सबसे पहली बात न्यायपालिका द्वारा बलात्कारियों की सज़ा निलम्बित करने या उन्हें रिहा करने का यह कोई पहला मामला नहीं है। बिल्किस बानो के बलात्कारियों को रिहा करना, आई.आई.टी, बी.एच.यू. की घटना के आरोपियों को रिहा करना, छत्तीसगढ़ में पति द्वारा किये गये बलात्कार को बलात्कार न मानना इसके ही कुछ और प्रातिनिधिक उदाहरण हैं। इतना ही नहीं बलात्कार के मामले में ही सज़ा काट रहे आसाराम और राम रहीम को आये-दिन पैरोल पर छोड़ना क्या दर्शाता है?

बलात्कारियों को रिहा करने, सज़ा माफ़ करने के साथ-साथ हालिया समय में अदालतों में बैठे न्यायधीशों की तरफ़ से जो बयान दिये गये हैं, वह भी बहुत कुछ बताते हैं। जस्टिस राम मनोहर नारायण मिश्रा ने कहा कि बच्ची के निजी अंगों को छूना तथा

पायजामा के नाड़े को तोड़ना दुष्कर्म करने की कोशिश नहीं है। महाराष्ट्र की एक महिला जज ने कहा कि जब तक त्वचा का स्पर्श त्वचा से न हो तब तक दुष्कर्म नहीं माना जायेगा। सितम्बर 2024 में दिल्ली के हौजखास में हुए बलात्कार के मामले की सुनवाई करते हुए अपराधी को बेल दे दी गयी और पीड़िता को ही ज़िम्मेदार ठहराते हुए यह बयान दिया गया कि – "इस न्यायलय का मानना है कि अगर पीड़िता के आरोप को सच भी मान लिया जाए तो भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है उसने खुद ही मुसीबत को आमन्त्रित किया और इसके लिए वह खुद ज़िम्मेदार है।" जज साहब ने यह बात इसलिए कही क्योंकि पीड़िता ने शराब का सेवन किया हुआ था! यह कौन-सा क़ानून है? अगर कोई स्त्री शराब का सेवन करती है तो यह उसका जीवन है और उसका अधिकार है, चाहे उससे कोई सहमत हो या न हो। यह किसी भी व्यक्ति को उसके साथ बलात्कार करने की इजाज़त कैसे दे देता है?

उपरोक्त स्त्री-विरोधी और पितृसत्तात्मक बयानों के साथ ही कई साम्प्रदायिक बयान भी न्यायाधीशों की तरफ़ से आए हैं। उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं - विश्व हिन्दू परिषद के एक कार्यक्रम में इलाहाबाद हाइकोर्ट के जज शेखर यादव ने कहा कि "मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि यह भारत है और यह देश बहुसंख्यकों की इच्छा से चलेगा।" राजस्थान हाईकोर्ट के जज ने गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करने तथा गौ-हत्या करने पर आजीवन कारावास की सिफ़ारिश की।

स्त्री-विरोधी, पितृसत्तात्मक और साम्प्रदायिक बयानबाज़ी करने वाली न्यायपालिका का एक और चेहरा भी देखना ज़रूरी है ताकि समग्रता में उसके चरित्र को समझ सकें।

एक तरफ़ न्यायपालिका बलात्कारियों की सज़ा माफ़ कर उन्हें रिहा कर रही है वहीं दूसरी तरफ़ मोदी-शाह शासन का विरोध करने वाले राजनीतिक कैदियों को जेल में बिना किसी मुक़दमे के 5-5 साल बन्द रखा जा रहा है। उमर ख़ालिद, शरजील इमाम सहित अनेक राजनीतिक बन्दियों को ज़मानत तक नहीं दी जा रही है जबकि न्यायालय बार-बार इस बात को रेखांकित करता है कि ज़मानत नियम है और जेल अपवाद। ऐसा लगता है यह बात केवल भाजपा-संघ से जुड़े बलात्कारियों पर ही लागू होती है! वह भी ऐसे मामलों में भी जिनमें आरोप सिद्ध हो चुका है और कोई संघी बलात्कारी सज़ा काट रहा होता है!

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज सत्ता में वही भाजपा बैठी है जिसमें कुलदीप सिंह सेंगर भी था। इसके साथ ही चिन्मयानंद, प्रज्वल रेवन्ना, बृजभूषण शरण सिंह भी भाजपा में ही है जो बलात्कार मामले में संलिप्त थे। योगी आदित्यनाथ द्वारा अभी हाल में दिए गए बयान से भाजपा के स्त्री-विरोधी चरित्र को समझा जा सकता है जिसमें वह कहते हैं कि औरतों को आज़ाद नहीं छोड़ा जा सकता। ऐसी पार्टी अगर सत्ता में हो तो बलात्कार के पीड़िता को न्याय मिलना लगभग नामुमकिन हो जाता है और यदि आरोपी भाजपा-संघ से जुड़ा है (जैसा कि आजकल ज़्यादातर मामलों में दिखायी दे रहा है) तो न्याय की बात भूल ही जाइए।

हमें आज इस बात को अच्छे तरीक़े से समझ लेना चाहिए कि आम तौर पर न्यायपालिका पूँजीपति वर्ग और इस व्यवस्था के हितों के अनुरूप काम करती है। कई बार पूँजीवादी व्यवस्था के दूरगामी हितों के लिए किसी एक या कुछ पूँजीपतियों को वह नियन्त्रित भी करती है। लेकिन वह भी इसीलिए किया जाता है ताकि पूँजीवादी व्यवस्था के दूरगामी हितों की सेवा की जा सके। जब फ़ासीवादी सत्ता हो तब न्यायपालिका के चरित्र में गुणात्मक बदलाव देखने को मिलता है। दरअसल फ़ासीवादी शक्तियाँ बहुत ही व्यवस्थित ढंग से न्यायपालिका के फ़ासीवादीकरण के काम को ऊपर से नीचे तक अंजाम देती है। 21वीं सदी के फ़ासीवाद की यह एक विशेषता है कि वह पूँजीवादी जनवाद (जिसका एक अंग न्यायपालिका भी है) के ऊपरी खोल को बरक़रार रखते हुए उसकी अन्तर्वस्तु को खोखला कर देता है। आज भारतीय न्यायपालिका के साथ यही हुआ है। अब यह बात आम पत्रकार और प्रेक्षक भी अच्छी तरह से समझ रहे हैं।

बहरहाल, न्यायपालिका में फ़ासीवादी घुसपैठ के कारण बलात्कारियों को शह और संरक्षण मिल रहा है। इस कारण उनका मनोबल भी बढ़ रहा है और स्त्री-विरोधी अपराध भी। NCRB के आँकड़ों के अनुसार जहाँ साल 2020 में 49,385 बलात्कार दर्ज हुए थे वहीं साल 2022 में स्त्री-उत्पीड़न की घटनाएँ बढ़कर 65,743 हो गयी। इसके विपरीत बलात्कार की घटनाओं में सज़ा मिलने की दर में कमी आयी है। साल 2021 में 25.2% मामलों में सज़ा हुई तो वहीं साल 2022 में 23.2% मामलों में ही सज़ा हुई।

हम देख सकते हैं कि भाजपा के सत्ता में आने के बाद स्त्री-विरोधी अपराधों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। समूची राज्यसत्ता के उपकरण व न्यायपालिका के "भीतर से टेक-ओवर" के कारण भी इन घटनाओं में वृद्धि हो रही है। यदि हम सच्चे अर्थों में स्त्री-विरोधी घटनाओं को रोकना चाहते हैं तो हमें फ़ासीवाद का संगठित प्रतिरोध करना पड़ेगा क्योंकि फ़ासीवाद प्रकृति से ही मज़दूर-विरोधी, मेहनतकश-विरोधी होने के साथ-साथ ब्राह्मणवादी, पितृसत्तात्मक और स्त्री-विरोधी भी होता हैं और इन विचारों को संरक्षण भी देता है। फ़ासीवाद को ख़त्म किए बिना बढ़ती स्त्री-विरोधी घटनाओं को नहीं रोका जा सकता है।

अंकिता हत्याकाण्ड : न्याय के लिए एक बार फ़िर हज़ारों लोग सड़कों पर उतरे मगर भाजपा बेशर्मी से 'वीआईपी' को बचाने में जुटी!

● शिवा

अभी हाल ही में उत्तराखण्ड की राजधानी देहरादून में अंकिता भण्डारी को न्याय दिलाने के लिए हजारों की संख्या में लोग सड़कों पर उतर पड़े! पूरे उत्तराखण्ड में अंकिता केस की सुप्रीम कोर्ट या हाई कोर्ट के जज की निगरानी में सीबीआई जाँच और "वीआईपी" का नाम उजागर करने की माँग को लेकर जगह-जगह कई दिनों तक छोटे-बड़े प्रदर्शन होते रहे। देहरादून में हजारों की संख्या में लोगों ने मुख्यमन्त्री आवास का घेराव भी किया। जिसके दबाव में आकर धामी सरकार ने सीबीआई जाँच की मंजूरी तो दे दी लेकिन जज की निगरानी में जाँच होगी इस पर कोई स्पष्टता नहीं दी। साथ

ही पूरा सरकारी अमला और भाजपा अन्त तक अंकिता केस में "वीआईपी" के होने को लेकर इन्कार ही करते रहे।

तीन साल पहले सितम्बर 2022 में हुए अंकिता भण्डारी हत्याकाण्ड ने पूरे उत्तराखण्ड को झोकझोर दिया था! अंकिता एक आम ग़रीब घर की लड़की थी। जिसने अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए पौड़ी जिले के यमकेश्वर स्थित वंतरा रिजॉर्ट में रिसेप्शनिस्ट का काम शुरू किया था। इस रिजॉर्ट का संचालक भाजपा नेता विनोद आर्य का बेटा पुलकित आर्य और उसके दो सहयोगी सौरभ भास्कर और अंकित थे। 18 सितम्बर को अचानक अंकिता के ग़ायब होने की ख़बर आती है।

(पेज 4 पर जारी)

हरियाणा श्रम विभाग का ‘वर्क स्लिप घोटाला’: भाजपा सरकार के “सुशासन” में लूट का लाइसेंस और मज़दूरों के अधिकारों पर हमला

● आशु, हरियाणा

भाजपा द्वारा हरियाणा विधानसभा चुनाव से पहले मतदाताओं को लाभार्थी बनाकर किया गया 1500 करोड़ रुपये का घोटाला अब उजागर हो रहा है। भाजपा लोकसभा से लेकर विधानसभा चुनावों तक राज्य मशीनरी, यानी चुनाव आयोग, पुलिस-प्रशासन, नौकरशाही आदि में घुसपैठ करके और लाभार्थी योजनाओं (लाडली योजना, आजीविका मिशन आदि) के ज़रिये पैसे के बदले मतदान करवाकर चुनावों में हेरा-फेरी और चोरी करती रही है। इसी कड़ी में 2024 के हरियाणा विधानसभा चुनाव के नतीजे भी शामिल हैं। चुनावों से पहले ज़मीन पर भाजपा के खिलाफ़ ज़बरदस्त लहर मौजूद थी, तब भी पार्टी का स्पष्ट बहुमत से जीतना आम लोगों के लिए हैरानी का सबब बना। लेकिन उस चुनाव में भाजपा–संघ की जातिगत बँटवारे की राजनीति के साथ-साथ पैसों का भी बड़ा खेल हुआ था, जिसकी परतें अब मुख्यमन्त्री नायब सिंह सैनी और अनिल विज की आपसी खींचतान के चलते खुलती जा रही हैं।

पिछले महीने श्रम मन्त्री अनिल विज ने हरियाणा के श्रम विभाग में 1500 करोड़ रुपये के घोटाले को लेकर प्रेस विज्ञप्ति जारी की। श्रम विभाग में सामने आया यह ‘वर्क स्लिप स्कैम’ कोई साधारण घोटाला नहीं, बल्कि मेहनतकशों व मज़दूरों के हक़ पर सीधा डाका है। मन्त्री अनिल विज के आदेश पर हुई जाँच ने ख़ुद-ब-ख़ुद पूरे सिस्टम में व्याप्त भष्टाचार और भाजपा-संघ परिवार के असली “चाल-चरित्र-चेहरे” को उजागर कर दिया है। हरियाणा भवन एवं अन्य सन्निर्माण कर्मकार कल्याण बोर्ड से जुड़े इस घोटाले में 13 ज़िलों की जाँच के दौरान 91 प्रतिशत ‘वर्क स्लिप’ फ़र्ज़ी पायी गयीं। क़रीब 6 लाख ‘वर्क स्लिप’ की जाँच में केवल 53 हज़ार वैध निकलीं, जबकि शेष पूरी तरह फ़र्ज़ी थीं। यह साफ़ दिखाता है कि योजनाएँ मज़दूरों के लिए नहीं, बल्कि दलालों, अफ़सरों और सत्ताधारी संरक्षण में पल रहे भ्रष्ट नेटवर्क के लिए चलायी जा रही थीं।

जाँच में यह भी सामने आया कि 2.21 लाख पंजीकृत मज़दूरों में से सिर्फ़ 14,240 ही वास्तविक पात्र थे। कई इलाक़ों में पूरे के पूरे गाँव ‘फ़र्ज़ी मज़दूरों’ के गाँव बन गये। कन्यादान, बच्चों की शिक्षा, मकान निर्माण और पेंशन जैसी योजनाओं में जमकर बन्दरबाँट हुई। एक-एक फ़र्ज़ी मज़दूर को औसतन ढाई लाख रुपये तक का लाभ दिलाया गया, जबकि असली निर्माण मज़दूर—जो निर्माण स्थलों पर खून-पसीना बहाता है—90 दिन की वेरिफ़िकेशन प्रक्रिया के लिए दफ़्तर-दफ़्तर भटकता रहता है। बिना रिश्वत के उसका काम नहीं होता है। यह व्यवस्था सीधी-सीधी लूट की व्यवस्था है जिसमें आम जनता पर लादे गये करों से वसूले गये सैकड़ों करोड़ रुपये का नुकसान हुआ और असली मज़दूर अपने हक़ से वंचित रह गये।

ज्ञात हो कि 2018 में ऑनलाइन सिस्टम के नाम पर मज़दूरों को लूटने का लाइसेंस दे दिया गया था। यूनियनों से वेरिफ़िकेशन का अधिकार छीन लिया गया और पंचायत सचिवों व पटवारियों को यह ताक़त सौंप दी गयी थी। नतीजा—‘वर्क स्लिप’ के नाम पर खुली दलाली। मज़दूर संगठनों के द्वारा जब इस लूट के खिलाफ़ आवाज़ उठायी गयी तब सरकार ने उनकी एक नहीं सुनी और मनमाने फ़रमान जारी कर दिये। आज हालात यह हैं कि श्रम बोर्ड हो, मनरेगा हो, बीपीएल राशन कार्ड हो या प्रधानमन्त्री आवास योजना हो—हर जगह असली मज़दूर ‘फ़र्ज़ी’ साबित किया जा रहा है और फ़र्ज़ी लाभार्थी मलाई खा रहे हैं! यह कोई प्रशासनिक “सुधार” नहीं, बल्कि सुनियोजित मज़दूर-विरोधी साज़िश है।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि जाँच के नाम पर सरकार केवल खानापूर्ति कर रही है, जबकि पिछले छह महीनों से भवन निर्माण मज़दूरों की वेबसाइट तक बन्द पड़ी है और ज़रूरतमंद मज़दूरों को कोई सुविधा नहीं मिल रही है। तमाम जनपक्षधर ताक़तों द्वारा आरोप लगाये जा रहे हैं कि फ़र्ज़ी मज़दूरों की फ़ौज खड़ी कर भाजपा द्वारा विधानसभा चुनावों में पैसे बाँटे गये और वोट बटोरे गये, जबकि असली मज़दूरों के अधिकारों पर डाका डाला गया। पिछले तीन महीनों से भवन निर्माण मज़दूर यूनियनों का संयुक्त मोर्चा लगातार माँग कर रहा है कि इस घोटाले में ज़िम्मेदार अफ़सरों और राजनीतिक संरक्षण देने वालों पर कड़ी कार्रवाई हो। साथ ही, यूनियनों को फिर से वेरिफ़िकेशन का अधिकार दिया जाये, फ़र्ज़ीवाड़ा बन्द किया जाये और असली मज़दूरों को उनका हक़ मिले—वरना मज़दूर चुप नहीं बैठेंगे तथा संघर्ष और तेज़ होगा।

...भाजपा बेशर्मी से ‘वीआईपी’ को बचाने में जुटी!

(पेज 3 से आगे)

घटना के छह दिन बाद 24 सितम्बर को रिज़ॉर्ट से कुछ किलोमीटर दूर चीला बैराज में उसकी लाश मिलती है। अंकिता की हत्या की ख़बर मिलने पर उसके दोस्त ने उससे अन्तिम बातचीत और चैट को शेयर करते हुए बताया कि उस पर किसी “वीआईपी” को “एक्स्ट्रा” सर्विस देने का दबाव बनाया जा रहा था। घटना में “वीआईपी” का नाम आने के बाद से ही अंकिता को न्याय दिलाने के लिए उठे आन्दोलन में ये प्रमुख माँग उसी समय से बन गयी थी कि उस “वीआईपी” का नाम उजागर किया जाये और उसे कड़ी से कड़ी सजा दिलायी जाये! लेकिन धामी सरकार का रवैया इस मुद्दे को किसी भी क़ीमत पर दबाने का था। घटना के तुरन्त बाद ही उत्तराखण्ड की भाजपा सरकार ने रिज़ॉर्ट के उस हिस्से को जहाँ अंकिता रहती थी और जहाँ इस पूरी घटना को सामने लाने वाले साक्ष्य मिल सकते थे वहाँ आनन-फानन में बुलडोजर चलवा दिया! पुलकित आर्य और उसके दोनों साथियों को गिरफ़्तार कर लिया गया। लेकिन जिस “वीआईपी” को “एक्स्ट्रा” सर्विस देने के लिए अंकिता पर दबाव बनाया गया और उसकी हत्या तक कर दी गयी उसके नाम को उजागर करने के बजाय पूरा महकमा चुप्पी मारे बैठा रहा।

मामले की जाँच के लिए एक एसआईटी गठित की गयी। तीन साल बाद 30 मई 2025 को इसी एसआईटी की रिपोर्ट के आधार पर कोटद्वार की अपर जिला एवं सत्र न्यायालय ने अभियुक्तों को दोषी ठहराते हुए उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनायी। इसके बाद भी जनअसन्तोष शान्त नहीं हुआ। अंकिता के माता-पिता के साथ ही इन्साफ़पसन्द लोग भी इस अधूरे न्याय को स्वीकार करने के बजाए मामले में “वीआईपी” का नाम उजागर करने को लेकर सीबीआई जाँच की माँग करते रहे।

इस मामले में हालिया उबाल तब देखने को मिला जब भाजपा के ही एक पूर्व विधायक सुरेश राठौर की पत्नी उर्मिला सनावर ने एक ऑडियो रिकॉर्डिंग वायरल करते हुए उस “वीआईपी” के नाम को उजागर करने का दावा किया। कथित तौर पर यह “वीआईपी” भाजपा का राष्ट्रीय महासचिव दुष्यन्त कुमार गौतम है जो वर्तमान में उत्तराखण्ड का भाजपा प्रभारी भी है। इस रिकार्डिंग के सामने आने के बाद जनता के सब्र का बाँध टूट गया और हज़ारों लोग और तमाम जनसंगठन सड़कों पर उतर पड़े। जाहिर है कि यह जनअसन्तोष केवल एक अंकिता को लेकर नहीं था। बल्कि भाजपा के 11 सालों के शासनकाल में देशभर में हजारों अंकिताओं के साथ जो बर्बरता और दरिंदगी होती रही है और ये “बलात्कारी जनता पार्टी” (बीजेपी) बलात्कारियों-अपराधियों और हत्यारों का जिस तरह से संरक्षण करती रही है, भ्रष्टाचार के नए-नए कीर्तिमान स्थापित करती रही है, उसके ख़िलाफ़ भी था। इस घटना ने एक बार फिर भाजपा के “स्त्री हितैषी” चरित्र की नंगी सच्चाई को बेनक़ाब किया है। उत्तराखण्ड की भाजपा सरकार पूरे मामले को शुरू से ही दबाने, सबूतों को मिटाने की कोशिश करती रही और उक्त “वीआईपी” को संरक्षण देती रही। इस पूरे मामले को लम्बा खींचने, टालमटोल करने और जन भावनाओं से अलग सीबीआई जाँच न कराने की धामी सरकार का रवैया इस सन्देह को मजबूत करता है कि घटना में भाजपा के बड़े नेता शामिल हैं। यहाँ तक कि इस घटना को पुरज़ोर तरीके से उठाने वाले पत्रकार आशुतोष नेगी को गिरफ़्तार कर लिया गया। अंकिता का केस लड़ने वाले वकील के ऊपर भी दबाव बनाया गया।

ये कोई पहला मामला नहीं है जब भाजपा और संघ ने बलात्कारियों-अपराधियों को बचाने में, उनको संरक्षण देने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया हो! इतना ही नहीं इस “संस्कारी पार्टी” में बलात्कारियों-अपराधियों के स्वागत की एक नई परम्परा ही शुरू कर दी गई है। अभी कुलदीप सिंह सेंगर के जमानत के शर्मनाक फ़ैसले आने के बाद ये लोग फूल-माला लेकर ‘बलात्कारी स्वागत’ हेतु पहुँच गये थे। यह अलग बात है कि जन दबाव के चलते सुप्रीम कोर्ट को ये फ़ैसला रद्द करना पड़ा। कठुआ में आठ साल की बच्ची के बलात्कारियों के समर्थन में भाजपाइयों ने तिरंगा रैली निकाली थी। बिलकिस बानो के बलात्कारियों की रिहाई के बाद भाजपा नेताओं द्वारा अच्छे “संस्कारी ब्राह्मण” होने के लिए बलात्कारियों का फूल-माला से स्वागत किया गया था। आई.आई.टी बी.एच.यू के गैंगरेप के आरोपी की ज़मानत होने पर केक काटकर स्वागत किया गया था। इतना ही नहीं अभी बिहार चुनाव के बाद बिहार के मुख्यमन्त्री नीतीश कुमार ने एक मुस्लिम महिला के चेहरे से उसका नक़ाब खींच दिया जिसके समर्थन में भाजपा नेताओं ने उबकाई लाने वाले बयान तक दिए। पिछले साल महिला पहलवानों ने बृजभूषण शरण सिंह के ख़िलाफ़ यौन शोषण का आरोप लगाया तो “स्त्री सम्मान” की बात करने वाली भाजपा ने पूरी ताक़त से अपराधी का बचाव किया और अब वह सभी आरोपों से बरी हो चुका है।

‘बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ’ का नारा उछालकर देश का प्रधानमन्त्री बने नरेन्द्र मोदी कर्नाटक में प्रज्वल रेवन्ना जैसे बलात्कारी और अपराधी के साथ मंच साझा करता है और उसके लिए चुनाव प्रचार करता है, जिस पर 2800 महिलाओं के साथ बलात्कार करने और वीडियो क्लिप बनाने का वीभत्स मामला है। ये ही हैं भाजपा का “संस्कार”, “सुचिता” और “स्त्री सम्मान”!

अंकिता भण्डारी का मसला एक बर्बर स्त्री-उत्पीड़न का मसला है। यह एक स्त्री-अधिकार, जनवादी-अधिकार और नागरिक आज़ादी का मसला है और एक सत्तारूढ़ पार्टी के चरम भ्रष्ट होने का नमूना है, जिसके ख़िलाफ़ जनता सड़कों पर उतर पड़ी। अंकिता को न्याय दिलाने के साथ ही अगर हम इस लड़ाई को आगे ले जाना चाहते हैं तो हमें कुछ मसलों पर स्पष्ट समझ बनानी होगी। पहली बात यह कि, भाजपा चाहे जितना स्त्री हितैषी होने का दावा करती रहे हमें इसके असली चाल-चेहरे-चरित्र को जनता के सामने उजागर करते रहना होगा। दूसरी बात, न्यायपालिका पर आँख मूँदकर भरोसा नहीं किया जा सकता है। आज तो तमाम अन्य संस्थाओं की तरह इसे भी अन्दर से फ़ासीवादियों द्वारा खोखला कर दिया गया है और जो थोड़ा-बहुत प्रति-सन्तुलन का काम न्यायपालिका पूँजीवादी व्यवस्था में शासक वर्ग के दूरगामी हितों के मद्देनज़र किया करती थी, अब वह भी नहीं कर सकती है। यहाँ पर भी ऐसे लोगों को बैठाया गया है जो संघ या भाजपा से जुड़े रहे हैं। ये आवारा कुत्तों के मसले का तो स्वतः संज्ञान ले सकते हैं, लेकिन जनता के मुद्दे इन्हें नहीं दिखते। कुलदीप सिंह सेंगर जैसे बर्बर अपराधी को बरी करना हो तो इनके हाथ नहीं काँपते! आज के दौर में न्यायपालिका पर न्याय के लिए भरोसा करना आकाश-कुसुम की अभिलाषा के समान है। अगर कोई जज कोई ऐसा फ़ैसला दे भी देता है जो किसी भाजपा नेता या संघी प्रशासक के विरुद्ध जाता हो, तो सरकारें उस फ़ैसले को लागू करने से खुलेआम इन्कार कर देती हैं और फिर जज को ही ठिकाने लगा दिया जाता है। संभल का मसला इस बात की ताईद करता है।

तीसरी और अन्तिम बात ये कि अंकिता को न्याय दिलाने के लिए उत्तराखण्ड में चल रहे आन्दोलन में एक धारा ऐसी मौजूद है जो हर मुद्दे को पहाड़ बनाम मैदान में बाँटकर कमज़ोर और दिग्भ्रमित करने का ख़तरनाक काम कर रही है। ‘पहाड़ की बेटी’ के नारे लगाये जा रहे हैं! इनसे पूछा जाना चाहिए कि क्या निर्भया उनकी बेटी नहीं थी? क्या मैदान की बेटी के साथ इस तरह की बर्बरता होगी तो वह खामोश होकर बैठ जाएँगे? इनकी राजनीति के भी असली मक़सद को समझना होगा और जनता के सामने उजागर करना होगा।

गिग वर्कर्स की हड़ताल और आगे के संघर्ष का रास्ता

● अनन्त

बीते वर्ष की आख़िरी तारीख़ देशभर के गिग वर्कर्स के संघर्ष के दिन के तौर पर अंकित की जायेगी। उस दिन देशभर में तक़रीबन दो लाख गिग वर्कर्स ने अपनी माँगों को लेकर हड़ताल की जोकि गिग वर्कर्स की आज तक की सबसे बड़ी हड़ताल थी। हालाँकि यह उनकी पहली हड़ताल नहीं थी; ठीक एक हफ़्ते पहले यानी 25 दिसम्बर को भी वे एक हड़ताल आयोजित कर चुके थे। यह इसी कड़ी में उनकी अगली हड़ताल थी। दिल्ली, मुम्बई, हैदराबाद, पुणे जैसे देश के बड़े-बड़े महानगरों में 31 दिसम्बर की सुबह से देर रात तक गिग वर्कर्स इस हड़ताल का हिस्सा बने। ज़्यादातर श्रमिकों ने इस दौरान अपना फ़ोन बन्द रखा या अपने-अपने प्लैटफ़ॉर्म्स के ऐप्स से लॉगआउट रहे। कई जगहों पर श्रमिक एक साथ शान्तिपूर्ण तरीक़े से एकत्रित हुए, कोई नारेबाज़ी नहीं की महज़ शान्ति से काम का बहिष्कार किया। हालाँकि नियोक्ताओं और प्रशासन को यह भी मंज़ूर नहीं था और पुलिस ने आकर कई जगह पर श्रमिकों को डराया-धमकाया और काम पर वापस लौटने के लिए कहा। इसके पहले 25 दिसम्बर को क़रीब 40,000 श्रमिकों ने हड़ताल की थी। इस अवसर पर हैदराबाद में 2,000 श्रमिकों ने मोटरसाइकिल रैली भी निकाली थी।

31 दिसम्बर की हड़ताल का असर साफ़ तौर पर मालिक वर्ग और सरकारों के ऊपर दिख रहा था। यही कारण था कि ये सभी इस हड़ताल को "असफल" घोषित करने की हड़बड़ी में थे। हड़ताल को महज़ कुछ "शरारती तत्वों" की हरकत बता रहे थे। लेकिन हक़ीक़त यह है कि श्रमिकों की इस हड़ताल का असर ज़ोरदार था। एक ओर कम्पनियों ने प्रति ऑर्डर भुगतान की दर आम दिनों की तुलना में कहीं ज़्यादा बढ़ा दी थी तो दूसरी तरफ़ वे अन्य तरह के प्रोत्साहन राशि का प्रलोभन भी दे रहीं थीं। लेकिन इन तमाम प्लैटफ़ार्म कम्पनियों का असली मज़दूर-विरोधी चेहरा महज़ इस बात से उजागर हो जाता है कि ये शान्तिपूर्ण ढंग से एकत्रित श्रमिकों को पुलिस के द्वारा डरा-धमका भी रही थीं और जहाँ कहीं वे एकत्रित हो रहे थे वहाँ उन्हें पुलिस द्वारा तितर-बितर करवा रही थीं। यह श्रमिकों की हड़ताल का ही असर था कि सरकार को श्रमिकों की माँगों में से एक बेहद महत्वपूर्ण माँग पर ध्यान देना पड़ा। यह हड़ताल का ही भय था कि सरकार को इस मसले पर त्वरित हस्तक्षेप कर इन क्विक-कॉमर्स कम्पनियों से बन्द दरवाज़े के पीछे बैठक कर 'दस-मिनट डिलीवरी' जैसी भयानक मज़दूर-विरोधी सेवा को वापस लेने की "अपील" करनी पड़ी। हालाँकि मोदी सरकार अभी भी इन कम्पनियों से "अपील" ही कर रही है! ऐसी भयंकर अमानवीय सेवा तत्काल बन्द करने के लिए इन कम्पनियों को निर्देश नहीं जारी कर रही है! बहरहाल, इसके नतीजे के तौर पर अब ये कम्पनियाँ अपने प्लैटफ़ॉर्म्स से दस मिनट डिलीवरी जैसे स्लोगन हटा रही हैं।

गिग वर्कर्स हड़ताल पर क्यों गये?

गिग वर्कर्स कम तथा अस्थिर आय, असुरक्षित कार्यस्थितियों, लम्बे कार्यदिवस व अत्यधिक कार्य दबाव, एल्गोरिदम आधारित नियन्त्रण व मनमाने तरीक़े की दण्ड व्यवस्था तथा श्रम अधिकारों व सामाजिक सुरक्षा का अभाव आदि वजहों के ख़िलाफ़ संघर्षरत हैं।

'नेशनल काउंसिल फॉर अप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च' के एक सर्वेक्षण के मुताबिक एक गिग वर्कर हफ़्ते में औसतन 69 घण्टे तक काम करता है। यानी सप्ताह में बिना एक दिन की छुट्टी के प्रतिदिन क़रीब 10 घण्टे। मान लीजिये कि हफ़्ते में किसी दिन वह ब्रेक लेता है तो बाक़ी के छह दिन 11.5 घण्टे काम कर रहा होता है। इतने घण्टे खटने-पीसने के बावजूद वह बमुश्किल दिन का 500/600 रुपए तक ही कमा पाता है। यानी औसतन प्रति घण्टे मात्र 50 से 70 रुपए। 2020 की एक रिपोर्ट के मुताबिक 47% गिग वर्कर्स बिना उधार लिए अपने ज़रूरी खर्चों तक का वहन नहीं कर पाते हैं।

दरअसल गिग अर्थव्यवस्था के साथ यह विभ्रम जुड़ा हुआ है कि बेरोज़गार युवा व छात्र 'पार्टटाइम जॉब' के तौर पर गिग वर्क करते हैं। शुरुआत में गिग कार्य को परिवार की आय का पूरक स्रोत माना जाता था और कभी-कभी छात्रों तथा/या बेरोज़गारों के लिए अतिरिक्त आय का साधन समझा जाता था। हालाँकि एक सर्वेक्षण के मुताबिक लगभग 88% गिग वर्कर्स अपनी मुख्य आजीविका के रूप में गिग कार्य पर ही निर्भर हैं। पिछले लम्बे समय से प्रति-डिलीवरी भुगतान में लगातार कमी की गयी है जबकि ईंधन, वाहन रखरखाव और अन्य खर्च बढ़ते जा रहे हैं। ज़्यादातर गिग वर्कर्स का वास्तविक मासिक आय स्तर न्यूनतम मज़दूरी से भी कम रह जाता है। प्रोत्साहन (incentives) और भुगतान दरें बिना पूर्व सूचना के बदल दी जाती हैं जिससे आय पूरी तरह अनिश्चित हो जाती है। असल में इन श्रमिकों की वास्तविक आय न्यूनतम वेतन से भी काफ़ी कम होती है।

गिग वर्कर्स चाहे वह राइडर अथवा डिलीवरी पार्टनर हों या फिर "डार्क स्टोर", वेयर हाउस, गोदामों आदि में काम करने वाले श्रमिक हों, सभी अत्यधिक कार्य दबाव झेलने तथा असुरक्षित कार्यस्थितियों में काम करने के लिए विवश होते हैं। 10-मिनट या अति-तेज़ डिलीवरी मॉडल के कारण मज़दूरों पर अत्यधिक समय दबाव डाला जाता है। विभिन्न क्विक-कॉमर्स प्लैटफ़ॉर्म्स द्वारा अल्ट्रा-फास्ट डिलीवरी कराने की हड़बड़ी उपभोक्ताओं की वास्तविक आवश्यकता से नहीं बल्कि स्वयं इन प्लैटफ़ॉर्मों के बीच ज़्यादा से ज़्यादा बाज़ार पर कब्ज़ा करने की बढ़ती प्रतिस्पर्धा से प्रेरित है, जिसका खामियाज़ा एक आम श्रमिक अपनी जान तक देकर भुगतता है।

क्विक-कॉमर्स प्लैटफ़ॉर्म्स के वेयर हाउस को कम्पनियाँ "डार्क स्टोर" कहती हैं और असल में यह श्रमिकों के लिए डार्क स्टोर ही होता है। ये ऐसे स्टोर्स होते हैं जहाँ आम ग्राहक सीधे जाकर खरीदारी नहीं कर सकता है। ऑनलाइन ऑर्डर करने के बाद यहाँ से ही उनके दरवाज़े तक सामान डिलीवर किया जाता है। इन "डार्क स्टोर्स" को कहीं भी बना दिया जा रहा है। जर्जर इमारतों से लेकर अँधेरे बेसमेंट तक जिसको जहाँ मौक़ा लगा वहाँ ऐसे स्टोर्स खोल लिए। कम्पनियाँ चाहती हैं कि अधिक से अधिक ऐसे स्टोर्स रिहायशी इलाक़े के बीच हों ताकि जल्दी से जल्दी और ज़्यादा से ज़्यादा ग्राहकों तक पहुँचा जा सके। इन स्टोर्स को बनाने को लेकर कोई क़ानूनी पैमाना नहीं लागू होता है। यहाँ श्रमिकों की आवाजाही के लिए बेहद संकुचित रास्ता होता है जिसके दोनों तरफ़ बड़े-बड़े रैंकों में सामान रखा होता है। हर तरफ़ सामान बिखरा होता है जिससे टकराने, उलझने और गिरने का खतरा बना रहता है। "डार्क स्टोर" अथवा वेयरहाउस के श्रमिक, जिन्हें 'पिकर्स' कहा जाता है, उनका काम ऑनलाइन ऑर्डर रिसीव करने के बाद भागदौड़ कर सारे सामान पैक कर आगे राइडर्स अथवा डिलीवरी पार्टनर को उपलब्ध कराना होता है और इस काम को करने के लिए उन्हें केवल कुछ सेकेंड्स का समय मिलता है। 'पिकर्स' को मज़दूरी के तौर पर हर पिकिंग आइटम पर केवल कुछ पैसे ही मिलते हैं।

"डार्क स्टोर" से उठाने के बाद अब उस सामान को उपभोक्ता तक तय समय के अन्दर पहुँचाने का दबाव डिलीवरी पार्टनर्स पर होता है। समय पर डिलीवरी के लिए उन्हें ट्रैफिक नियमों की अनदेखी करनी पड़ती है, जिससे दुर्घटनाओं का ख़तरा बढ़ जाता है। काम करने के लिए कोई सुरक्षा उपकरण नहीं होता, बीमा और दुर्घटना के बाद सहायता अक्सर अपर्याप्त या नाममात्र की होती है। हालाँकि कम्पनियाँ सरकार के हस्तक्षेप के बाद अपने प्लैटफ़ॉर्म्स से दस मिनट डिलीवरी जैसे वायदे हटा रही हैं या उसे दूसरे ढंग से कह रही हैं। लेकिन श्रमिकों पर असल दबाव प्रति ऑर्डर भुगतान का दर गिरा कर डाला जाता है। श्रमिकों को अपनी बुनियादी ज़रूरतें भी पूरी करने के लिए अधिक से अधिक ऑर्डर डिलीवर करने की आवश्यकता होती है।

इतने दबाव में और इतने कम पैसे पर काम करने के बावजूद श्रमिकों को ऐप्स के मनमाने तौर तरीकों का सामना करना पड़ता है जिससे काम की निरन्तरता और आमदनी की निरन्तरता अनिश्चित बनी रहती है। एक गिग वर्कर के लिए काम का आवण्टन, रेटिंग, प्रोत्साहन और दण्ड पूरी तरह ऐप के एल्गोरिदम द्वारा तय किया जाता है। बिना स्पष्ट कारण बताये आईडी ब्लॉक या अकाउण्ट डी-एक्टिवेट कर दिया जाता है। श्रमिकों द्वारा इन फ़ैसलों के ख़िलाफ़ अपील या शिक़ायत करने की कोई प्रभावी तथा पारदर्शी व्यवस्था उपलब्ध नहीं होती है।

इन गिग तथा प्लैटफ़ॉर्म वर्कर्स के लिए किसी भी प्रकार का कोई श्रम अधिकार तथा सामाजिक सुरक्षा मौजूद नहीं है। नये लेबर कोड, जिन्हें लेकर इतना हो-हल्ला मचाया जा रहा है कि अब पहली बार गिग तथा प्लैटफ़ार्म वर्कर्स श्रम क़ानूनों के दायरे में आयेंगे, दरअसल मोदी सरकार के तमाम जुमलों की तरह केवल एक जुमला है, और न केवल जुमला है बल्कि मज़दूर वर्ग के श्रम अधिकारों पर अब तक का सबसे बड़ा हमला भी है। दरअसल हक़ीक़त यह है कि नये लेबर कोड ऐसे श्रमिकों को महज़ परिभाषित करते हैं लेकिन औपचारिक तौर पर कोई वास्तविक हक़-अधिकार नहीं देते। सच्चाई यह है कि गिग वर्कर्स को कर्मचारी नहीं बल्कि "स्व-रोज़गारप्राप्त" माना जाता है। यही कारण है कि उन्हें न्यूनतम वेतन, सवेतन अवकाश, भविष्य निधि, पेंशन, स्वास्थ्य बीमा और सामूहिक सौदेबाज़ी जैसे अधिकार नहीं मिलते। इसके अलावा अधिकांश सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ भी व्यवहार में इनपर लागू नहीं होती हैं। इन्हीं उपरोक्त कारणों की वजह से गिग तथा प्लैटफ़ार्म वर्कर्स हड़ताल करने के लिए विवश थे।

गिग वर्कर्स की मुख्य माँगें

श्रम मंत्रालय को सौंपे गये ज्ञापन में हड़ताली श्रमिकों की तरफ़ से निम्न छह माँगें पेश की गयीं। पहला, प्लैटफ़ार्म कम्पनियों का श्रम क़ानूनों के अन्तर्गत विनियमन हो। कम्पनियाँ अपनी मर्ज़ी से नियम बनाती और बदलती हैं, उनके ऊपर किसी भी प्रकार की जवाबदेही नहीं होती है। मौजूदा श्रम कानूनों में उनके लिए श्रमिकों के प्रति कोई बाध्यकारी देनदारी नहीं है।

दूसरा, असुरक्षित "10-मिनट डिलीवरी" मॉडल पर प्रतिबन्ध लगाया जाये। कम्पनियाँ ग्राहकों को बेहद कम समय में सेवा तथा सामान पहुँचाने का वायदा करती हैं। इन अव्यावहारिक समय-सीमाओं के कारण "डार्क स्टोर" के पिकर्स तथा डिलीवरी पार्टनर्स दोनों को अत्यधिक शारीरिक व मानसिक दबाव झेलना पड़ता है, जिस कारण दुर्घटनाओं की सम्भावनाएँ बढ़ती हैं। डिलीवरी समय तय करते समय ट्रैफिक, मौसम और सुरक्षा को प्राथमिकता दी जाये।

तीसरा, मनमाने ढंग से आईडी ब्लॉक करने और दण्ड लगाने की प्रथा समाप्त की जाये। बिना परिस्थितियों की जाँच किये, बिना कोई कारण बताये किसी भी वर्कर की आईडी ब्लॉक अथवा अकाउण्ट डी-एक्टिवेशन पर रोक लगायी जाये। किसी भी दण्डात्मक कार्रवाई से पहले सुनवाई और अपील का अधिकार मिले। तथा एल्गोरिदम आधारित फैसलों में मानवीय हस्तक्षेप अनिवार्य हो। इसके अलावा श्रमिकों के शिकायत निवारण की प्रभावी व्यवस्था हो। इसके लिए स्वतन्त्र और पारदर्शी शिकायत निवारण तन्त्र बनाया जाये। केवल ऐप या ऑटो-रिप्लाई के बजाय वास्तविक सुनवाई हो।

चौथा, मज़दूरी की व्यवस्था न्यायसंगत तथा पारदर्शी हो। श्रमिकों को किये जाने वाले भुगतान का कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं है। भुगतान प्रणाली पारदर्शी हो ताकि मज़दूर को यह स्पष्ट हो कि उसे किस काम के लिए कितना भुगतान मिल रहा है। प्रति-डिलीवरी दरों में कटौती बन्द की जाये। न्यूनतम आय अथवा न्यूनतम मासिक मज़दूरी की गारण्टी दी जाये।

पाँचवाँ, स्वास्थ्य व दुर्घटना बीमा तथा पेंशन सहित सामाजिक सुरक्षा मिले। दुर्घटना बीमा, स्वास्थ्य बीमा और जीवन बीमा अनिवार्य किया जाये। वृद्धावस्था सुरक्षा और पेंशन जैसी योजनाएँ लागू की जाएँ। सभी गिग वर्कर्स का पंजीकरण कर उन्हें वास्तविक लाभ दिया जाए, केवल काग़ज़ी योजनाओं की घोषणा नहीं की जाये।

छठा, गिग वर्कर्स को केवल नाममात्र के लिए नहीं बल्कि वास्तविक तौर पर श्रम कानूनों के दायरे में लाया जाये। उन्हें श्रमिक का दर्जा तथा क़ानूनी अधिकार मिले। उनके लिए न्यूनतम मज़दूरी, सामूहिक सौदेबाज़ी और यूनियन व संगठन बनाने के अधिकार मान्य किए जाएँ।

इनके अलावा उनकी अन्य माँगें सुरक्षित कार्यस्थितियाँ तथा काम के घण्टे और विश्राम के नियमन से जुड़ी हैं। श्रमिकों की माँग है कि उन्हें हेलमेट, रेनकोट, जैकेट जैसे सुरक्षा उपकरण निःशुल्क उपलब्ध कराये जाएँ। किसी भी दुर्घटना की स्थिति में क़ानूनी रूप से कम्पनी की स्पष्ट ज़िम्मेदारी तय हो। कार्य से जुड़ी मानसिक और शारीरिक सुरक्षा को मान्यता दी जाए। अत्यधिक लम्बे (10–14 घण्टे) कार्यदिवस पर रोक लगे। काम के दौरान के प्रतीक्षा समय व दो ऑर्डर मिलने के बीच के अन्तराल का भी भुगतान किया जाए, उस समय को भी काम के हिस्से के तौर पर माना जाये। श्रमिकों के साप्ताहिक अवकाश और पर्याप्त विश्राम समय को सुनिश्चित किया जाए।

आगे के संघर्ष का रास्ता

गिग अर्थव्यवस्था तेज़ी से विस्तारित हो रही है। नीति आयोग के एक अनुमान के मुताबिक 2030 तक गिग अर्थव्यवस्था के तहत काम करने वाले श्रमिकों की संख्या 2.35 करोड़ तक हो जायेगी। आज यह संख्या क़रीब 1.5 करोड़ है। जिस गति से इसका विस्तार हो रहा है उसी गति से श्रमिकों की कार्यस्थितियाँ भी बद से बदतर हो रही हैं। निश्चित रूप से आने वाले समय में हम गिग वर्कर्स के बड़े-बड़े संघर्ष देखेंगे।

आज के ये संघर्ष शुरुआती संघर्ष हैं। आज गिग वर्कर्स की बड़ी आबादी

(पेज 6 पर जारी)

महाराष्ट्र नगर निगम चुनाव: अहमदनगर नगर निगम चुनाव में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) 17 प्रतिशत आबादी की पसन्द बनकर तीसरे स्थान पर रही

चुनावी धाँधली और घोटालों के बीच भाजपा–महायुती की अपेक्षित विजय, भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी को मिलाजुला प्रतिसाद और आगे की लड़ाई का प्रश्न

● निखिल एकडे

महाराष्ट्र में हुए 2026 नगर निगम चुनाव परिणामों ने एक बार फिर यह स्पष्ट किया है कि वर्तमान चुनाव प्रक्रिया में पूँजी और फ़ासिस्ट हस्तक्षेप का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है। भाजपा के नेतृत्व वाली महायुती ने 29 में से 23 नगर निगमों में सत्ता स्थापित कर व्यापक विजय हासिल की है। 2014 के बाद के चुनावी इतिहास को देखते हुए यह जीत अप्रत्याशित बिलकुल ही नहीं थी, किन्तु इसके पीछे अपनाये गये साधनों एवं किये गये घपलों ने फ़ासीवाद की कार्यदिशा को फिर से एक बार रेखांकित किया है, जिसमें वह जनवाद का चेहरा बनाये रखते हुए उसे अन्दर से पूरी तरह खोखला किये जा रहा है|

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने अहिल्यानगर/अहमदनगर में वार्ड 5, पुणे में वार्ड 39, मुंबई में वार्ड 140, 141 से चुनाव में हस्तक्षेप किया. इस चुनाव में भी पूँजीवादी चुनाव प्रणाली में क्रान्तिकारी हस्तक्षेप के सिद्धान्त के अनुरूप तथा सम्पूर्णतः मज़दूर एवं न्यायप्रिय जनता के आर्थिक सहयोग से चुनाव लड़ा। अभियान मज़दूरों एवं युवा स्वयंसेवकों के परिश्रम पर आधारित रहा तथा सर्वत्र मेहनतकश जनता ने इसका उत्साहपूर्वक स्वागत किया।

हम जानते हैं कि पूँजीवादी चुनाव में अंततः पूँजी की शक्ति ही निर्णायक साबित होती हैं। आर.डब्लू.पी.आई. के उम्मीदवार को अहिल्यानगर/अहमदनगर में 1740 वोट मिले (जो पूरे वोटों में लगभग 17 प्रतिशत है। मज़दूर पार्टी के उम्मीदवारों को मुम्बई में वार्ड 140 में 79, वार्ड 141 में 133, पुणे वार्ड 39 में 456 वोट मिले।

अहिल्यानगर/अहमदनगर में सत्ता पक्ष की ओर से प्राप्त धमकियों एवं प्रलोभनों को नकारते हुए, धमकियों का जनता के समर्थन के बल पर सामना करते हुए मज़दूर पार्टी ने चुनावों में हस्तक्षेप किया। जातिगत आधार पर प्रचार प्रस्तावों को वैचारिक आधार पर पार्टी ने दृढता से नकारा। मज़दूर वर्गीय विचारधारा और राजनीति पर अडिग रहते हुए भारत की क्रान्तिकारी मजदूर पार्टी 1740 वोट के साथ 17 प्रतिशत आबादी की पसन्द बनकर तीसरे स्थान पर रही। ये भारी समर्थन पार्टी के मज़दूर वर्गीय विचारों, वर्षों से चले आ रहे क्रान्तिकारी सुधार कार्यों एवं आन्दोलनों के प्रति जनता के समर्थन का प्रतीक है। यह युवाओं एवं मज़दूरों द्वारा निर्मित एकता का प्रमाण है और यही एकता हमारी वास्तविक शक्ति तथा दीर्घकालिक संघर्ष की प्रारम्भिक विजय है।

महाराष्ट्र में कुल 29 नगर निगमों में चुनाव हुए और भाजपा के नेतृत्व वाली महायुती ने 29 में से 23 नगर निगमों में सत्ता स्थापित कर विजय हासिल की है। पर इस बड़ी जीत को फ़ासिस्टों को मिला व्यापक जनसमर्थन मानना भारी भूल होगी। पूरी चुनावी प्रक्रिया मतक्षेत्रों के पुनर्गठन, मतदाता सूची में बदलाव, करियरवादी उम्मीदवारों की ख़रीद-फ़रोख़्त, विरोधी नामांकनों को रद्द करवाना, दबाव और धन बल से 68 निर्विरोध निर्वाचन, मिटाई जा सकने वाली स्याही का उपयोग, दोहरे मतदाताओं का प्रयोग और ईवीएम से सम्बन्धित बहुत सारे आरोपों से सनी रही। ये तथाकथित लोकतान्त्रिक चुनाव के भारी बाज़ारीकरण और बड़े पैमाने पर फ़ासिस्ट नियन्त्रण के ठोस संकेत हैं। स्थानीय स्तर पर अलग-अलग रंगों और झण्डों वाली भाजपा–एमीम, भाजपा–कांग्रेस, कांग्रेस–शिवसेना, कांग्रेस–मनसे, शिवसेना–मनसे और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के धड़ों के खुले या छुपे गठबन्धनों ने और चुनावों के बाद इन पूँजीवादी पार्टियों द्वारा सत्ता के समीकरण बिठाने के लिए जो तिकड़मबाज़ी चल रही है, उसने इन दलों की वैचारिक धोखाधड़ी और छलकपट की पूँजीवादी राजनीति को पुनः उजागर किया है।

यह भी स्पष्ट हुआ कि किसी भी प्रकार की जनवादी मोर्चा की राजनीति मज़दूर वर्ग को फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष में कहीं नहीं ले जाएगी। जनवादी मोर्चों का यथार्थ पुनः खुलकर सामने आया तथा मज़दूर वर्ग के नेतृत्व वाले फासीवाद-विरोधी जन आन्दोलन की आवश्यकता एवं महत्त्व पुनः रेखांकित हुआ। चुनावी ज़मीन के अलावा तृणमूल स्तर पर फ़ासीवादी हमलों के प्रतिरोध हेतु मज़दूर वर्ग के शक्तिशाली आन्दोलन को खड़ा करने की आवश्यकता अब और अधिक तीव्र हुई है।

मजदूर मेहनतकश जनता का संघर्ष जारी रहेगा

इन हालात में अहमदनगर/अहिल्यानगर में मिला समर्थन निश्चित ही ज़रूरी सीख देता है | भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) के नेतृत्व में लड़कर जनता ने अब तक जो कुछ भी प्राप्त किया – चाहे वह पीने के पानी की पाइपलाइन हो, बिजली के ट्रांसफॉर्मर हो, साफ गटर-नालियाँ हों अथवा बच्चों का स्कूल में प्रवेश – इन सभी को हमने सामूहिक संघर्ष, दबाव निर्माण एवं सत्ता को विवश कर हासिल किया है। इससे यह बात रेखांकित होती है कि विचारधारात्मक-राजनीतिक प्रचार-प्रसार के साथ ही जनता के असली हक़ों के संघर्ष और निरन्तर क्रान्तिकारी सुधार कार्य वह तरीका है जिसे मज़दूर वर्ग के राजनितिक कार्यकर्ताओं को लगन के साथ लागू करना होगा और पूँजीवादी चुनावी राजनीति का सशक्त विकल्प जनता के सामने रखना होगा | अन्य जगहों पर आर.डब्लू.पी.आई. को मिला कम समर्थन एक तरफ क्रान्तिकारी विचारधारा और राजनीति की जनता में कमज़ोर पैठ को दर्शाता है, और दूसरी तरफ़ हर तरीक़े की अस्मितावादी राजनीति, विशेष तौर पर धर्म, जाति, और प्रान्त के नाम पर की जाने वाली राजनीति के प्रभाव को दर्शाता है। चुनावों में भाजपा के बाद ओवैसी की पार्टी (एमीम) जैसी मुस्लिम अस्मितावादी और शिवसेना जैसी मराठी अस्मितावादी पार्टी को मिली 'सफलता' इसी को दर्शाती है।

चुनाव आते-जाते रहेंगे, किन्तु मज़दूर एवं मेहनतकश वर्ग का वास्तविक संघर्ष सड़क पर है – सम्मानजनक जीवन हेतु, रोजगार-शिक्षा-स्वास्थ्य जैसे मूलभूत अधिकारों हेतु तथा पूँजीवाद और विशेषतः फ़ासीवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी सामाजिक आंदोलन के निर्माण हेतु।

आने वाले दिनों में ज़्यादातर नगर निगमों में पुनः फ़ासीवादी भाजपा नेतृत्व वाली महायुती और कुछ एक नगर निगमों में दूसरी चुनावबाज़ पार्टीओं का शासन स्थापित होने वाला है। नगर निगमों में बिल्डरों, ठेकेदारों, दलालों, व्यापारियों और बड़े–छोटे पूँजीपतियों के हाथ में सत्ता पहले की तरह बनी रहेगी। लूट, निजीकरण, ठेकेदारी व्यवस्था, नगरीय जनसुविधाओं की कमी, बस्तियों की बदहाली, नशाख़ोरी, अपराध तथा जाति-धर्म-भाषा आधारित संघर्ष यथावत् बने रहेंगे। पूंजीपति वर्ग की लूट पहले की तरह जारी रहेगी – केवल उसकी लूट के आपसी बँटवारे में छोटा-मोटा परिवर्तन होगा।

इसके ख़िलाफ़ मज़दूर-मेहनतकश आबादी का कार्यभार है मज़दूर वर्गीय राजनीति के आधार पर एकजुट होना तथा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना। पूँजीवादी चुनाव उसका मात्र एक छोटा एवं सीमित अंग है। वास्तविक संघर्ष सड़कों पर, संगठित मज़दूर समुदायों में और सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से संचालित होता है। अन्ततः मजदूर-मेहनतकश जनता को राजनीतिक दृष्टि से सजग होकर, संगठित शक्ति बनकर संघर्ष करना होगा – तभी उसे अपने अधिकार प्राप्त होंगे। समाज के क्रान्तिकारी रूपान्तरण, शोषण के अन्त, जाति व्यवस्था-धर्मवाद तथा स्त्री-पुरुष असमानता के उन्मूलन हेतु मज़दूर वर्ग की सत्ता के लिए संघर्ष अपरिहार्य है। आर.डब्लू.पी.आई. मज़दूर वर्ग एवं मेहनतकश जनता को संगठित कर इस संघर्ष को नये संकल्प के साथ आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है।

इसके लिए संगठित ढाँचों का निर्माण, राजनीतिक चेतना का प्रसार और वर्ग आधारित एकता स्थापित करने के आह्वान को हमें स्वीकारना ही होगा |

गिग वर्कर्स की हड़ताल और आगे के संघर्ष का रास्ता

(पेज 5 से आगे)

असंगठित और एक दूसरे से कटी हुई है। गिग काम की अस्थायी प्रकृति और एक ही कार्यस्थल पर एक साथ काम न करने की स्थिति मज़दूरों के संगठित होने और उन्हें संगठित करने में विशेष चुनौतियाँ पैदा करती है। लेकिन इसके बावजूद जिस तर्ज़ पर इस हड़ताल ने श्रमिकों को अपने वर्ग हितों के प्रति सचेत किया है, वह निश्चित तौर पर आने वाले समय के संघर्षों में श्रमिकों को व्यापक स्तर पर गोलबन्द होने में मदद करेगा।

25 दिसम्बर तथा 31 दिसम्बर की हड़ताल के पहले कोविड काल में ओला, ऊबर तथा स्विगी के श्रमिकों ने बड़ी संख्या में लेकिन अलग-अलग प्रदर्शन किये थे जिसके नतीजे के तौर पर गिग तथा प्लैटफ़ार्म वर्कर्स की कुछ यूनियनें अस्तित्व में आयी थीं। 25 दिसम्बर तथा 31 दिसम्बर की हड़ताल में अब तक सबसे अधिक श्रमिकों ने शिरकत की है और एक साथ कई अलग-अलग कम्पनियों के श्रमिक हड़ताल पर गये हैं। यह पहले के उन संघर्षों, जिसमें कि एक ही तरह के गिग वर्कर्स या एक ही कम्पनी अथवा एक ही शहर के कुछ स्टोर्स के श्रमिकों की हड़ताल हुआ करती थी, के मुक़ाबले एक आगे बढ़ा हुआ क़दम है।

आज गिग वर्कर्स को दो तरह से अपनी एकता विस्तारित करनी होगी। पहला, तमाम तरह के गिग-प्लैटफ़ार्म वर्कर, डिलीवरी पार्टनर, पिकर्स, राइडर्स, चाहे वे ओला, उबर, रैपिडो आदि जैसे प्लैटफॉर्म्स के साथ जुड़कर सवारी उठाने का काम करते हों, या ब्लिंकिट, इंस्टमार्ट, बिगबास्केट, जियोमार्ट आदि क्विक-कॉमर्स प्लेटफ़ॉर्म्स के साथ जुड़े पिकर्स तथा डिलीवरी पार्टनर्स हों, या ज़ोमैटो, स्विगी जैसे फूड डिलीवरी प्लेटफ़ॉर्म्स के डिलीवरी पार्टनर्स आदि हों सभी तरह के प्लैटफ़ॉर्म्स आधारित ट्रांसपोर्टेशन वर्कर्स की एक न्यूनतम साझा माँग बनती है, इसीलिए उन्हें एकसाथ एकजुट और लामबन्द होने की ज़रूरत है।

दूसरा, मौजूदा हड़ताल मुख्य रूप से बड़े महानगरों तक ही सीमित रही। कई राज्य राजधानी स्तर तक के शहरों के प्लैटफ़ार्म वर्कर्स इससे दूर और कटे हुए थे। जबकि आज छोटे-छोटे शहरों से लेकर गाँव-कस्बों तक यह अर्थव्यवस्था फैल रही है। इसलिए पूरे देश में ऊपर से लेकर नीचे तक के श्रमिकों को एकजुट और गोलबन्द करने की ज़रूरत है।

हम गिग मज़दूरों को भी यह समझना होगा कि अपनी एकता को और व्यापक तथा जुझारू बनाने के लिए ज़रूरी है कि हम चुनावी पार्टियों और एनजीओ-समर्थित यूनियनों के दायरे से बाहर निकलकर अपनी स्वतन्त्र क्रान्तिकारी यूनियनें खड़ी करें। क्रान्तिकारी ताक़तों को भी इस स्वतःस्फूर्त एकजुटता को सचेतन रूप से स्थापित, संगठित और स्थायी एकता में तब्दील करना होगा। एक क्रान्तिकारी यूनियन के बैनर तले ही देशभर में काम करने वाले करोड़ों गिग मज़दूरों को संगठित किया जा सकता है और एक समुचित रणनीति के ज़रिये प्लैटफ़ार्म कम्पनियों को झुकाया जा सकता है।

आज जब गिग कम्पनियों के मालिक रिकॉर्डतोड़ बिक्री का जश्न मना रहे हैं और अकूत मुनाफ़ा पीटने के नशे में चूर हैं तब यह कोई नहीं जानता कि गिग मज़दूरों की पीड़ा और गुस्सा कब एक संगठित आक्रोश की सुनामी में बदल जायेगा। उम्मीद है कि मज़दूर इन शुरुवाती हड़तालों के बाद राजनीतिक रूप से और परिपक्व होंगे तथा अपने वर्ग हितों के प्रति और अधिक सचेत होंगे। वे इन हड़तालों की कमियों-खामियों को समझेंगे, उन्हें दूर करेंगे और अपने हक़ व सम्मान की लड़ाई में पहले से अधिक मज़बूती के साथ फिर से एकजुट होंगे। इतिहास का यह सबक़ है कि शोषण और अन्याय के ख़िलाफ़ चल रहे संघर्ष में मज़दूर हार-जीत दोनों से सीखते हैं। मज़दूरों की कई असफल लड़ाइयाँ ही आगे आने वाले बड़े संघर्षों की बुनियाद बनती हैं। जब तक पूरे अधिकार नहीं मिलते तब तक संघर्ष जारी रहता है।

बांग्लादेश में अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ हिंसा का मुद्दा उछालकर देश में साम्प्रदायिक उन्माद भड़काने और बंगाल चुनाव में ध्रुवीकरण की कोशिश में लगी भाजपा-संघ की दंगाई फ़ौज

● योगेश मीणा

पिछले डेढ़ सालों में और विशेषकर क़रीब 2 महीनों से बांग्लादेश में अल्पसंख्यक-विरोधी घटनाएँ तेज़ी से सामने आ रही हैं। दीपू चन्द्र दास नामक बांग्लादेशी मज़दूर की 18 दिसम्बर को धार्मिक बेअदबी का आरोप लगा कर मारे जाने व बेरहमी से ज़िन्दा जला दिये जाने से लेकर हिन्दू परिवारों के घर जलाये जाने तक की ख़बरें लगातार सामने आ रही हैं। जहाँ एक ओर बांग्लादेश में इस्लामिक कट्टरपन्थी ताक़तें बांग्लादेशी जनाक्रोश को ग़लत दिशा में मोड़ने के लिए हिन्दू बांग्लादेशियों समेत अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को निशाना बना रही हैं, वहीं दूसरी ओर इस पूरे मुद्दे पर घड़ियाली आँसू बहा रही भाजपा-संघ भारत में अपने नापाक़ इरादों को साधने में लगी है। भाजपा-संघ इस पूरे घटनाक्रम का इस्तेमाल अपनी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति के प्रचार के लिए कर रही है, जिसके फ़ौरी निशाने पर बंगाल विधानसभा चुनाव-2026 है। बांग्लादेश में हो रहे अल्पसंख्यक-विरोधी हमलों को बहाना बना कर भाजपा-संघ भारत में साम्प्रदायिक माहौल बनाने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। हालाँकि देश स्तर पर इनकी दाल गलती नहीं दिख रही है, लेकिन पश्चिम बंगाल में इस मुद्दे को भाजपा-संघ के साम्प्रदायिक भोपू ज़ोरों से उठा रहे हैं। बांग्लादेश के घटनाक्रम को पश्चिम बंगाल चुनावों में केन्द्रीय मुद्दा बनाने की कोशिशों में भाजपा-संघ, गोदी मीडिया दौड़ धूप करने में लगे हैं।

ग़ौरतलब है कि जुलाई 2024 से बांग्लादेश की राजनीति उथल-पुथल के दौर से गुज़र रही है। जुलाई 2024 में बेरोज़गारी, महँगाई व बुनियादी सुविधाओं तक के अभाव के कारण सालों से दबा बांग्लादेश की जनता का गुस्सा सड़कों पर फूट पड़ा था। इसका फौरी 'ट्रिगर' भले ही बांग्लादेश राष्ट्र मुक्ति युद्ध में शामिल सैनानियों के परिवारों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सरकारी नौकरियों व संस्थानों में प्राथमिकता देती हुई राज्य नीति बनी, लेकिन इसकी जड़ में था, पूँजीवाद से तबाह-बर्बाद होती आम जनता का गुस्सा; विशेषकर बेरोज़गारी की मार झेलती बांग्लादेश की छात्र-नौजवान आबादी का। छात्रों-नौजवानों की अगुवाई में बांग्लादेशी जनता ने सड़कों का रूख़ इख़्तियार किया। बांग्लादेश में सत्तारूढ़ आवामी लीग ने पूरी ताक़त से इस जनउभार के दमन का प्रयास किया था। लेकिन जब शेख़ हसीना की तानाशाहाना सरकार द्वारा जनआक्रोश को कुचलने के सारे हथकण्डों को नाकामयाबी ही हाथ लगी तो प्रधानमन्त्री शेख़ हसीना तक को बांग्लादेश छोड़ भागना पड़ा। लेकिन देश स्तर पर किसी क्रान्तिकारी विकल्प के अभाव के चलते मुस्लिम कट्टरपन्थी, बांग्लादेश राष्ट्रवादी पार्टी (BNP) समेत तमाम प्रतिक्रियावादी ताक़तें बांग्लादेशी आन्दोलन में अपनी जड़े मजबूत करने में कुछ सफ़ल होती लग रही हैं, जिसके चलते आन्दोलन के जुझारू चरित्र होने, यहाँ तक की कई बार जनवादी अधिकारों के मुद्दों को उठाने के बावजूद भी बांग्लादेशी जनउभार कोई क्रान्तिकारी रूख़ नहीं इख़्तियार कर सका है। ऐसे समय में मज़दूर वर्गीय क्रान्तिकारी पार्टी का मक़सद होता है नौजवानों व व्यापक मेहनतकश जनता को बेरोज़गारी, महँगाई, समेत उनकी समस्याओं पर एकजुट करते हुए अवाम के असली शत्रु - पूँजीवाद व पूँजीपति वर्ग - के ख़िलाफ़ गोलबन्द-संगठित करना होता है। वहीं दूसरी तरफ़ अगल-अलग गुटों को जोड़कर - जिसके साम्प्रदायिक गुट भी शामिल है - जुलाई प्रदर्शनों के दौरान बनी राष्ट्रीय नागरिक पार्टी (NCP) से ये उम्मीद नहीं की जा सकती। साथ ही धार्मिक कट्टरपन्थी समेत अन्य प्रतिक्रियावादी दल आन्दोलन को ग़लत दिशा में मोड़ कर लोगों के गुस्से को ठण्डा करने के प्रयासों में लगे हैं। मौजूदा घटनाक्रम इसी की ओर इशारा कर रहे हैं। बांग्लादेश में जनउभार के बाद से ही जमात-ए-इस्लामी समेत तमाम मुस्लिम कट्टरपन्थी संगठन व अन्य प्रतिक्रियावादी ताक़तें जनता के गुस्से को ग़लत दिशा में मोड़ने के काम को खुले तौर पर कर रहे हैं। इसी के लिए बांग्लादेश के हिन्दू समेत अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को निशाना भी बनाया जा रहा है। जहाँ कोई तुच्छ व्यक्तिगत टकराहट भी दो सम्प्रदाय के लोगों में हो तो उसे भी धार्मिक रंग पहना के अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेकने में कमी नहीं छोड़ी जा रही है। इसी की बलि मज़दूर दीपू चन्द्र दास को चढ़ाया गया था।

ऐसी घटनाओं में विशेषकर मुहम्मद युनुस की अन्तरिम सरकार के दौरान बढ़ोत्तरी हुई है। राजनीति में करियर बनाने की अपनी इच्छा को युनुस 2007 में ही ज़ाहिर कर चुके थे। हालाँकि अपेक्षित जनसमर्थन न मिलने के चलते वे जल्दी ही इससे पीछे हटने लगे थे। लेकिन जुलाई 2024 के प्रदर्शनों में उन्होंने फिर राजनीति में करियर बनाने के सपनों को ताज़ा कर दिया। सरकार का नेतृत्व करने का मौका मिलते ही मुहम्मद युनुस ने तुरन्त अपने ऊपर लगे श्रम अधिकारों के हनन, काला धन, कर चोरी, भ्रष्टाचार समेत अन्य केस हटवा लिये। बांग्लादेशी आन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए भी युनुस ने मुस्लिम कट्टरपन्थी संगठनों पर से क़ानूनी पाबन्दियाँ तक हटा दी है; बांग्लादेश राष्ट्र मुक्ति संघर्ष में पाकिस्तानी फौज़ के साथ बांग्लादेशियों के नरसंहार में सहायक रही जमात-ए-इस्लामी पर से भी क़ानूनी पाबन्दी हटा दी गयी है। ये बात दीगर है कि आवामी लीग व बांग्लादेशी राष्ट्रवादी पार्टी (बांग्लादेशी की 2 मुख्य पार्टियाँ) ने समय-समय पर जमात के साथ साझा चुनावी मोर्चा बनाया है। ख़ैर, इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि कैसे राष्ट्र मुक्ति युद्ध के दौरान इन संघर्षों के विरोधी व हाशिए पर पड़े संगठन (जैसे भारत में आरएसएस) पूँजीवादी आर्थिक संकट के गहराने व राजनीतिक परिस्थितियों के बदलने से समाज में पकड़ मजबूत करने लगते हैं। इसी का ही नतीजा है कि बांग्लादेश में अल्पसंख्यक समुदायों को निशाना बना कर बांग्लादेशी जन उभार को ग़लत दिशा में ले जाने की कोशिशें की जा रही है।

लेकिन बांग्लादेश में हो रही निर्मम हत्याओं का इस्तेमाल भारत में संघ-भाजपा-गोदी मीडिया द्वारा भी अपने फ़ासीवादी मंसूबे साधने के लिए किया जा रहा है; आख़िर लोगों की चिताओ पर राजनीतिक रोटियाँ सेकने की इनसे बड़ी काबिलियत किसके ही पास होगी! बांग्लादेश में निशाना बनायी जा रही अल्पसंख्यक आबादी की "आपदा में फ़ायदा" ढूँढ़ते हुए भाजपा-आरएसएस व विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल समेत इनके अनेकों बगलबच्चा संगठनों ने पूरे देश में साम्प्रदायिक माहौल बनाने में कमी नहीं छोड़ी है। मीडिया-सोशल मीडिया के ज़रिये व सड़कों पर घूमते संघ के गुण्डे "बांग्लादेशी" के नाम पर देश की मुस्लिम आबादी को निशाना बना रहे हैं। जो काम बांग्लादेश में बिखरे ढंग से किया जा रहा है उसे सुनियोजित, संगठित व योजनाबद्ध तरीके से फ़ासीवादी भाजपा-संघ भारत में कर रहा है। यानी कि मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था में बर्बाद होती मेहनतकश जनता के असली दुश्मन इस पूँजीवादी व्यवस्था को बचाने के लिए जनता के सामने एक नक़ली शत्रु को पेश किया जा रहा है। इसके लिए अगर घड़ियाली आँसू बहा कर किसी की बर्बर हत्या का इस्तेमाल अपनी दंगाई राजनीति को मजबूत करने के लिए किया जा सकता है, तो उसमें भी भाजपा-संघ को परहेज़ नहीं; आख़िर रोज़ देश में खुलेआम क़त्लेआम तक करने वाली भाजपा-संघ-बजरंग दल को कैसा ही परहेज़ होगा! इसलिए ही पिछले साल दिसम्बर के अन्त में दिल्ली स्थित बांग्लादेश दूतावास के बाहर विश्व हिन्दू परिषद व बजरंग दल ने हंगामा मचाया था। लेकिन देश स्तर पर भाजपा-संघ इस मुद्दे पर साम्प्रदायिक फसल काटने में बहुत सफ़ल नहीं हो पा रही है; आख़िर एक ही घिसे-पिटे मुद्दे पर कब तक लोगों को बहलायेंगे! ख़ैर, लेकिन अभी निशाने पर पश्चिम बंगाल विधान सभा चुनाव है।

पश्चिम बंगाल विधान सभा चुनाव 2026 के मद्देनज़र भाजपा-संघ इस मुद्दे को पश्चिम बंगाल में 'प्रासंगिक' बनाने की पूरी कोशिशों में लगी है, इसलिए ही इस मुद्दे पर रैलियाँ-सभाएँ अभी से ही बंगाल में की जा रही है; जबकि दिल्ली स्थिति बांग्लादेशी दूतावास के सामने बजरंग दल की भीड़ कब की शान्त बैठ चुकी है! वजह ये भी है कि बंगाल की क्षेत्रीय राजनीति में "बाहरी" का पहलू काफ़ी प्रभावी है। तृणमूल कांग्रेस की एक हद तक ज़मीनी पकड़ होने (जिसके लिए माकपा जैसे संशोधनवादियों के कुकर्म भी ज़िम्मेदार हैं) के अतिरिक्त भाजपा के ख़िलाफ़ ममता बनर्जी का एक अहम मुद्दा "बंगाली-बाहरी" का रहा है। इसलिए भी भाजपा "बांग्लादेश के मुद्दे" को इतने ज़ोरो से पश्चिम बंगाल में उठा भी रही है। ग़ौरतलब है कि हर क़िस्म के प्रतिक्रियावाद को समाहित कर लेने में फ़ासीवादी माहिर होते है। ख़ैर, "बांग्लादेश" को मुद्दा बना कर भी भाजपा-संघ का मूल मक़सद मेहनतकश जनता का असल मुद्दों से ध्यान हटाना ही है। बेरोज़गारी, महँगाई जैसी देशव्यापी समस्याओं से पश्चिम बंगाल अछूता नहीं है; और इन्हीं असल समस्याओं के लिए जनता असल शत्रु - पूँजीवाद व पूँजीपति वर्ग - को न पहचाना जा सके इसलिए ही उसके सामने नक़ली शत्रु (मुसलमान) व नक़ली समस्याएँ पेश की जा रही हैं। अब पश्चिम बंगाल चुनावों में इसे अंजाम देने के लिए भाजपा-संघ ने "बांग्लादेश" के मुद्दे को चुना है। इसके साथ ही देश स्तर पर भाजपा-संघ द्वारा की जा रही वोट चोरी के मामले को भी "बांग्लादेशी" मुद्दे का इस्तेमाल कर शुरू से ही दरकिनार किये जाने की भी कोशिश की जा रही है। इसके साथ ही भाजपा अपने चुनावों में धाँधली व एसआईआर के ज़रिये जनता के स्वतन्त्र मत के अधिकारों को छीनने में भी कमी नहीं छोड़ रही है; जैसा अभी हाल में जयपुर, राजस्थान के एक बीएलओ ऑफ़िसर के बयान से भी समझा जा सकता है।

इसके साथ हमें ये बात भी समझनी चाहिए कि भले ही मोदी सरकार ने बांग्लादेश के हो रही अल्पसंख्यक विरोधी घटनाओं पर सामूहिक सहानुभूति ज़ाहिर की हो, लेकिन न भाजपा-संघ भारत की मेहनतकश अवाम की हितैषी है और न ही इसे बांग्लादेशी हिन्दुओं से कोई लगाव है। इनका मूल मक़सद है पूँजीपति वर्ग के हितों को सुरक्षित रखना। इसलिए ही जहाँ एक ओर भाजपा-संघ व इनके अनेकों बगलबच्चा संगठन "बांग्लादेशी" कह कर देश के मुसलमानों को निशाना बना रहे हैं, वहीं दूसरी ओर फ़ासीवादी मोदी सरकार शेख़ हसीना जैसे घोर जन-विरोधी 'बांग्लादेशी' नेता को शरण दे रही है। फ़ासीवादी मोदी सरकार के नेतृत्व में भारतीय पूँजीपति वर्ग भी बांग्लादेश में अपने निवेशों और मुनाफ़े के आयामों के लिए चिन्तित है, जिसके लिए वो भी पूरी कोशिश कर रहा है। लेकिन जहाँ एक ओर मोदी सरकार शासक वर्ग के हितों में वो बांग्लादेश से सम्बन्ध सामान्य करने में लगी है - जैसा तालिबान के साथ किया - वहीं दूसरी ओर बांग्लादेश में हुई घटनाओं को आधार बना कर भारत में अपनी फ़ासीवादी राजनीति का प्रचार कर रही है। ये विडम्बना नहीं बल्कि सच्चाई है। इसके साथ ही, हाल के समय में भारत-बांग्लादेश के राजकीय सम्बन्धों में अभूतपूर्व तनाव की स्थिति बनी हुई है। भारतीय पूँजीपति वर्ग का समर्थन-प्राप्त शेख़ हसीना के निर्वासन के बाद से ही फ़ासीवादी मोदी सरकार की "तेजस्वी" विदेश नीति का भी "तेज़" बांग्लादेश में कम होता लग रहा है। मुहम्मद युनुस के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार व तमाम कट्टरपन्थी संगठन बांग्लादेश में भारत-विरोधी नीतियों के लिए आधार तैयार कर रहे हैं। लेकिन ये अनायास में उभरती राजनीतिक दिशा नहीं बल्कि बांग्लादेशी पूँजीपति वर्ग द्वारा वैश्विक पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा में अपना हित साधने का ज़रिया है; जिसमें चीनी साम्राज्यवाद लगातार अपनी पकड़ मजबूत कर रहा है। इसीलिए ही तो बांग्लादेशी जनता का मुक्ति युद्ध के दौरान बर्बर क़त्लेआम करने वाली पाकिस्तान सरकार - चीनी साम्राज्यवाद का प्रभाव क्षेत्र - के साथ बांग्लादेशी सरकार की नज़दीकी बढ़ा रही है, और इसलिए ही पाकिस्तान में सत्तारूढ़ मुस्लिम लीग (नवाज़) के नेताओं का बांग्लादेश के प्रति 'संवेदना' उमड़ रही है। बांग्लादेश में जन आक्रोश का सड़कों पर फूटना कोई क्रान्तिकारी रूख़ न इख़्तियार कर सके, इसको लेकर शुरू से ही न केवल बांग्लादेशी पूँजीपति वर्ग बल्कि मोदी सरकार व सभी साम्राज्यवादी धड़े घबराये हुए हैं, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब श्रीलंका, फिलीपींस, म्यानमार, नेपाल समेत पूरे दक्षिण एशिया में उथल-पुथल हो रही है। हालाँकि बांग्लादेशी शासक वर्ग भी राजनीतिक अस्थिरता के कारण चीनी साम्राज्यवाद को कई रियायतें मुहैय्या करवाने को मजबूर है, लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था बचाने के लिए धार्मिक कट्टरपन्थ का उभार साम्राज्यवादी ताक़तों की साँठगाँठ में बांग्लादेशी पूँजीपति वर्ग की ही नीति है (भले ही ये उसकी पसन्दीदा नीति न हो), आम मेहनतकश जनता की नहीं। इसके लिए ही जमात-ए-इस्लामी जैसे प्रतिबन्धित कट्टरपन्थी संगठनों को भी खुली झूठ दी गयी है। इस कट्टरपन्थ का फ़ायदा बांग्लादेशी पूँजीपति को ही होगा, जिसके लिए पूँजीवादी व्यवस्था को जनता के आक्रोश के निशाने से बाहर कर दिया जायेगा।

ख़ैर, भारत व बांग्लादेशी की मेहनतकश जनता को देश के शासक वर्गों की समस्या को सुलझाने के लिए परेशान नहीं होना चाहिए। उम्मीद है कि बांग्लादेश में क्रान्तिकारी तत्व स्वयं को संगठित कर व्यापक मेहनतक जनता को क्रान्तिकारी दिशा में एकजुट करने का काम करेंगें। इसके साथ ही हम भारत की मेहनतकश जनता की व्यापक वर्गीय एकजुटता स्थापित करने का आह्वान करते हैं। आज ज़रूरी है कि हम अपने असल मुद्दों - शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार, आवास, आदि - पर संगठित हो, और भाजपा की दंगाई राजनीति का भण्डाफोड़ व विरोध करें। इसके लिए हमें शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के उस शिक्षा को भी लोगों में प्रचारित करने की ज़रूरत है, ख़ासकर आज जब भाजपा-संघ का साम्प्रदायिक फ़ासीवाद लोगों को साम्प्रदायिकता पर बाँटने व किसी राष्ट्र के ख़िलाफ़ नफ़रत भरने में लगा है – "संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

मज़दूर-विरोधी लेबर कोड वापस लेने पर मोदी सरकार को बाध्य करने के लिए

देशव्यापी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करें!

(पेज 1 से आगे)

व मज़दूर संगठन से पुरज़ोर समर्थन का वायदा भी किया है। **इन सेक्टरों में काम करने वाली मज़दूर व कर्मचारी आबादी ने इस प्रस्ताव का भारी समर्थन किया है। कई स्थानों पर स्थानीय व उससे ऊपर के नेतृत्वकारी यूनियन सदस्यों ने भी इस प्रस्ताव की तार्किकता को फ़ौरन समझा है, उसका समर्थन किया है और राष्ट्रीय नेतृत्व तक इस प्रस्ताव को पहुँचाने का वायदा किया है। इन अभियानों के दौरान यह आम राय स्पष्ट तौर पर संगठित मज़दूरों के बीच से सामने आयी है कि ऐसी आम हड़ताल के ज़रिये ही मोदी सरकार की इन नयी तानाशाहाना श्रम संहिताओं को वापस करवाया जा सकता है।**

लेकिन इसके बावजूद केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने काफ़ी मन्त्रणा के बाद मज़दूरों के दिल की आवाज़ को अनसुना कर दिया है और फिर से एक रस्मी एकदिनी हड़ताल का आह्वान किया है, जो 12 फ़रवरी को होगी। निश्चित तौर पर, हरेक औद्योगिक क्षेत्र, हरेक कारख़ाने, हरेक दुक़ान, दफ़्तर और कार्यस्थल के मज़दूर को इसमें शामिल होना चाहिए। यह मज़दूर वर्ग द्वारा अपनी एकजुटता के प्रदर्शन के लिए अनिवार्य है। लेकिन फिर से वही यक्ष-प्रश्न हमारे सामने खड़ा हो जाता है:

- **अगर पिछले तीन दशकों से लगभग हर वर्ष की गयी रस्मी एकदिनी या दोदिनी हड़तालों के बावजूद हम श्रम क़ानूनों की एक धीमी हत्या, श्रम विभाग की एक धीमी हत्या और मज़दूरों के बचे-खुचे हक़ो-हुक़ूक पर लगातार डाले जा रहे डाके को नहीं रोक पाये, अगर पिछले दस वर्षों में मज़दूरों के हक़ों पर मोदी सरकार द्वारा किये गये एक के बाद एक हमलों का हम कोई जवाब नहीं दे पाये, तो फिर से एकदिनी हड़ताल करके क्या हम एक बार और रस्मअदायगी के गड्ढे में नहीं गिर रहे हैं?**
- **इससे पहले भी जब मज़दूरों व कर्मचारियों की ओर से केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों के समक्ष लम्बी या अनिश्चितकालीन आम हड़ताल आयोजित करने की माँग आती थी, तो केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों के नेतृत्व के साथियों द्वारा हम मज़दूरों को बताया जाता था कि अनिश्चितकालीन आम हड़ताल हमारा 'ब्रह्मास्त्र' है और इसे सही समय पर इस्तेमाल करेंगे! अब इससे ज़्यादा सही समय क्या हो सकता है?**
- **तीन दशकों से जारी रस्म-अदायगी वाली हड़तालों के बावजूद हम न तो संगठित क्षेत्र में भर्तियों पर लगने वाली रोक को हटवा पाये, न हम संगठित क्षेत्र में जारी ठेकाकरण, दिहाड़ीकरण और कैजुअलीकरण को रोक पाये और न ही हम मज़दूरों के यूनियन-निर्माण जैसे जनवादी अधिकारों पर हमला रोक पाये। बहुसंख्यक अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए तो काग़ज़ी क़ानूनों का मतलब दशकों पहले ख़त्म हो चुका था, लेकिन अब वह संगठित होकर भी इन हक़ों के लिए नहीं लड़ पायेंगे क्योंकि काग़ज़ों से ही इन क़ानूनों को मिटा दिया गया है। जिन संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को सीमित तौर पर ये आधे-अधूरे सही लेकिन कुछ श्रम अधिकार मिलते रहे थे, वे भी अब नहीं मिलेंगे। तो यह सवाल हम सब मज़दूरों के सामने और विशेष तौर पर संगठित क्षेत्र के मज़दूरों के सामने है कि पिछले तीन दशकों की रस्मी एकदिनी/दोदिनी हड़ताल से हासिल क्या हुआ है?**
- **इन नये लेबर कोड्स का अर्थ यह होगा कि हमारे बच्चे भी आने वाले समय में अनौपचारिक व असंगठित ठेका, दिहाड़ी व कैज़ुअल मज़दूरों की क़तार में शामिल होने को बाध्य होंगे, चाहे वे मानसिक श्रमिक हों या शारीरिक श्रमिक। हर प्रकार क़ानूनी सुरक्षा, पक्की नौकरी की गारण्टी व श्रम अधिकार उनसे छीने जा चुके हैं। क्या हम अब भी मज़दूर वर्ग के हक़ों पर हो रहे इन हमलों को चुपचाप बर्दाश्त करने को तैयार हैं? अगर हाँ, तो फिर हम शायद इसी योग्य हैं कि पीठ झुकाकर पूँजीपतियों, मालिकों, धन्ना सेठों और उनकी मैनेजिंग कमेटी का काम करने वाली पूँजीवादी सरकारों के कोड़े अपनी पीठों पर खाएँ और अपने बच्चों को भी ग़ुलामी की यही विरासत सौंप कर जाएँ! यह बात सहज समझने योग्य है कि ये लेबर कोड एक दूरगामी क़दम हैं, जो मज़दूर वर्ग के हितों को अभूतपूर्व नुक़सान पहुँचाने वाले हैं। यही वक़्त है कि मज़दूर वर्ग और विशेष तौर पर संगठित क्षेत्र का मज़दूर व कर्मचारी वर्ग अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का बिगुल फूँके और यह ऐलान कर दे कि जब तक मोदी सरकार के फ़ासीवादी लेबर कोड वापस नहीं लिए जाते, तब तक आम हड़ताल जारी रहेगी।**

कोई भी मज़दूर साथी इस बात को सहज ही समझ सकता है। हड़ताल मज़दूर वर्ग के सबसे अहम हथियारों में से एक है। हड़ताल का मक़सद होता है मुनाफ़े का चक्का रोककर पूँजीपति वर्ग को अपनी माँगों पर झुकने के लिए मजबूर किया जाय। इसका मक़सद एकदिनी रोष-प्रदर्शन नहीं होता है। हड़ताल के इस बेहद अहम हथियार को पिछले तीन दशकों से जारी सालाना रस्मअदायगी वाली "हड़तालों" ने बेअसर कर दिया है। पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग पर निर्भर करता है। बिना उत्पादन के कोई मूल्य नहीं पैदा होता, कोई समृद्धि नहीं पैदा होती इसलिए कोई बेशी-मूल्य या मुनाफ़ा भी नहीं पैदा होता। और पूँजीपति को केवल एक ही बात से फ़र्क पड़ता है: मुनाफ़ा।

हड़ताल करना और अपनी जायज़ माँगों के लिए काम रोकना हमारा जनवादी अधिकार है। आज इस जनवादी अधिकार पर भी हमला बोला जा रहा है और नये लेबर कोड्स का एक मक़सद यूनियन बनाने और अधिकार और हड़ताल करने के अधिकार को भी प्रभावत: रद्द कर देना है। वजह यह कि इन अधिकारों पर अमल के लिए ऐसी शर्तें रख दी गयी हैं जो अन्यायपूर्ण हैं और सीधे शासक वर्ग की हिमायत के लिए बनायी गयी हैं।

ऐसे में, हम एक बार फिर से केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों के नेतृत्व से दिली अपील करते हैं कि वे वक़्त की नज़ाकत और ज़रूरत को समझें। मोदी-शाह सरकार और कुछ भी करने, कोई भी रस्मी क़वायद करने, ज़ुबानी जमाख़र्च करने, प्रतीकात्मक प्रदर्शन आदि करने से हमारी बात नहीं सुनेगी। उसे बात सुनने पर मजबूर करना होगा। यह तभी किया जा सकता है जब मज़दूर वर्ग अपने सबसे अहम हथियारों में से एक यानी आम हड़ताल का इस्तेमाल करे। आज जो हो रहा है, उससे बुरा कुछ और हो नहीं सकता है। तो फिर इस शस्त्र का प्रयोग करने में प्रतीक्षा किस बात की?

अगर अब भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन ये क़दम उठाने से घबरा जाते हैं, पीछे हट जाते हैं, सरकार से कोई समझौता कर लेते हैं, तो फिर उनकी नीयत और इरादों पर गम्भीर प्रश्न-चिह्न खड़े हो जायेंगे। अगर वे संघर्ष के आज के ज़रूरी क़दम पर मज़दूरों को नेतृत्व देने के लिए तैयार नहीं हैं, उनके मन की आवाज़ को सुनने को, उनकी एकदम जायज़ इच्छा को अभिव्यक्ति देने के लिए तैयार नहीं हैं, तो फिर ऐसे नेतृत्व की वास्तविक भूमिका क्या है? यह तो मज़दूर वर्ग के संघर्षों को सीमित रख उसे शासक वर्ग के लिए क्षतिशून्य और हानिहीन बना देने की भूमिका होगी, मज़दूर वर्ग को दंतनखविहीन बना देने की भूमिका होगी! हम उम्मीद करते हैं कि केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनें इस बात को समझती हैं, मज़दूरों व कर्मचारियों की भावनाओं को समझती हैं और इस समझ के साथ वे उपयुक्त क़दम उठायेंगी। यही मौक़ा है कि हम देश के धन्नासेठों, मालिकों, सट्टेबाज़ों, ठेकेदारों, दलालों, कुलकों-धनी किसानों को याद दिला दें कि समृद्धि के निर्माता अडाणी-अम्बानी, टाटा-बिड़ला नहीं होते, बल्कि देश के मज़दूर और ग़रीब किसान होते हैं। दुनिया के इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं जब बिना पूँजीपतियों के मज़दूरों-मेहनतकशों ने देश चलाये हैं, लेकिन ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है, जब मज़दूरों-मेहनतकशों के बिना पूँजीपतियों ने कोई देश चलाया हो।

अन्त में, यह याद दिलाना ज़रूरी है कि इसी समय मोदी सरकार ने प्रभावत: मनरेगा क़ानून को भी समाप्त ही कर दिया है। यानी ग्रामीण मज़दूरों के बुनियादी हक़ों पर एक अभूतपूर्व हमला किया गया है। 100 दिन के रोज़गार की गारण्टी कोई वास्तविक रोज़गार गारण्टी नहीं थी, लेकिन वह भी खेतिहर मज़दूरों की मोलभाव की क्षमता को बढ़ा रही थी, आम तौर पर औसत मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा कर रही थी और धनी किसानों-कुलकों समेत पूरे पूँजीपति वर्ग की निगाह में चुभ रही थी। अभी ग्रामीण मज़दूरों को यह अधूरी राहत मिलना भी पूँजीपति वर्ग को गँवारा नहीं है। यही वजह है धनी किसानों-कुलकों के संगठन इस पर ज़ुबानी जमाख़र्च की नौटंकी करने के अलावा न तो सिंघू बॉर्डर जाम कर रहे हैं और न ही हरियाणा-पंजाब शंभू बॉर्डर को जाम कर रहे हैं! उल्टे यह बात सभी आम ग्रामीण मज़दूरों को स्पष्ट है कि धनी किसान व कुलक यह चाहते हैं और प्रच्छन्न तौर पर उनकी माँग भी रही है कि मनरेगा क़ानून ख़त्म किया जाय या उसे निष्प्रभावी बना दिया जाय। मोदी सरकार ने यही काम किया है।

इसलिए इस आम हड़ताल का एक प्रमुख मसला हमें मनरेगा को समाप्त किये जाने के मसले को भी बनाना होगा और इस सवाल पर व्यापक ग्रामीण मेहनतकश आबादी, यानी ग्रामीण मज़दूर व ग़रीब किसानों को एकजुट और लामबन्द करना होगा। इसके आधार पर गाँव के ग़रीबों को भी इस आम हड़ताल में शामिल करना होगा। बिना गाँव के ग़रीबों, यानी ग्रामीण मज़दूरों, अर्द्धसर्वहारा, ग़रीब व परिधिगत किसानों के साथ आये, मज़दूर वर्ग की कोई भी लड़ाई कमज़ोर और अधूरी साबित होगी। वहीं गाँव के ग़रीबों की मुक्ति का प्रश्न अभिन्न तौर पर मज़दूर वर्ग की मुक्ति के प्रश्न से जुड़ा हुआ है। यह बात न सिर्फ़ दूरगामी तौर पर लागू होती है, बल्कि आज के समय के विशिष्ट संघर्षों के सन्दर्भ में भी लागू होती है। आज का सबसे अहम विशिष्ट संघर्ष नये लेबर कोड्स के विरुद्ध और मनरेगा क़ानून को ख़त्म किये जाने के विरुद्ध एक देशव्यापी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का संघर्ष है।

केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशनों को और ग़रीब किसानों और ग्रामीण मज़दूरों की नुमाइन्दगी का दावा करने वाले यूनियनों व संगठनों को ऐसी आम हड़ताल का आह्वान करना चाहिए। व्यापक मज़दूर-मेहनतकश आबादी को इन संगठनों व यूनियनों पर ऐसी आम हड़ताल का ऐलान करने का दबाव बनाना चाहिए। इस समय यही हमारे अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए सबसे अहम क़दम है। हम जितनी जल्दी इस बात को समझेंगे, उतना बेहतर होगा।

मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था, फ़ासिस्ट सरकार और पानी में फैलता ज़हर

(पेज 1 से आगे)

2,450 करोड़ रुपये तक पहुँच चुका है। इतने ख़र्च के बाद यह स्थिति साफ़ तौर पर बताती है कि यह सारा पैसा पानी और स्वच्छता पर ख़र्च होने की जगह नेताओं, अफ़सरों और ठेकेदारों के पेटों में चला गया।

प्रदूषित पानी पीने की वजह से लगातार मौतें हो रही थीं लेकिन जब यह एक विकराल समस्या की तरह फूट पड़ी तब जाकर यह कोई मसला बना। **खुद इन्दौर के मेयर ने यह स्वीकार किया है कि भागीरथपुरा के निवासी 2024 से लगातार प्रदूषित पानी की शिकायतें कर रहे थे, लेकिन उस समय सरकार के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी।** दिसम्बर से इलाक़े के लोगों ने स्थानीय पार्षद कमल बाघेल और विधायक कैलाश विजयवर्गीय से भी कई बार शिकायत की थी कि सप्लाई का पानी बेहद गन्दा हो चुका है और उससे बदबू आ रही है। इसके बावजूद प्रशासन हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा और समस्या के समाधान के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाये गये। उलटे, सरकार इस दौरान मुस्लिम-विरोधी भावनाएँ भड़काने, 'वन्दे मातरम्' पर फ़र्ज़ी बहसें छेड़ने और क्रिसमस सभाओं पर हमले करवाने में व्यस्त रही। नतीजतन, लोगों को वही नालियों से होता हुआ गन्दा और प्रदूषित पानी पीने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिससे डायरिया और उल्टी जैसी बीमारियाँ बड़े पैमाने पर फैल गयी।

यह घटना एक बार फिर साबित करती है कि सत्ता में बैठी यह फ़ासीवादी निज़ाम आम लोगों की ज़िन्दगियों के प्रति पूरी तरह संवेदनहीन है। इसकी पराकाष्ठा तब सामने आयी जब इस मुद्दे पर एक पत्रकार के स्थानीय विधायक, शहरी विकास मन्त्री और राज्य के सबसे बड़े दँगाई नेता कैलाश विजयवर्गीय से सवाल पूछने पर कैमरे के सामने पत्रकार को अभद्र गालियाँ दी गईं। जब इन्दौर के विभिन्न अस्पतालों में बेगुनाह बच्चे और लोग तड़प-तड़प कर मर रहे थे तब इस घटना के विरोध में होने वाले प्रदर्शन के सामने भाजपा के कार्यकर्ता नाच रहे थे। स्थानीय पार्षद झूला झूल रहा था और कैलाश विजयवर्गीय ट्विटर भाजपा नेताओं को जन्मदिन की बधाइयाँ देने में व्यस्त था। इस मामले में लीपा-पोती करने के लिए प्रशासन ने दावा किया कि सिर्फ़ चार लोगों की मौत डायरिया से हुई है और बाक़ी की "प्राकृतिक मृत्यु" हुई है। यही नहीं, इस घटना के तुरन्त बाद जिलाधिकारी शिवम वर्मा और मेयर पुष्यमित्र भार्गव राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के कार्यालय में हाजिरी देते हुए पाए गए। यह स्थिति बताती है कि देश के प्रशासन असल में कौन चला रहा है! खैर, जब इन्दौर के लोगों का ग़ुस्सा सड़कों पर फूट पड़ा और भागीरथपुरा की महिलाओं ने कैलाश विजयवर्गीय को इलाक़े से दुम दबाकर भागने पर मजबूर कर दिया, तब प्रशासन ने डैमेज कण्ट्रोल के नाम पर दो-तीन निचले स्तर के कर्मचारियों को निलम्बित कर दिया, ताकि कैलाश विजयवर्गीय जैसे बड़े नेताओं को बचाया जा सके—जो इन 18 मासूम लोगों की मौत के असली ज़िम्मेदार हैं।

लेकिन **इन्दौर, गुजरात और उत्तर प्रदेश की घटना तो महज़ समुद्र में डूबे विशाल हिमखण्ड का छोटा- सा दिख रहा शीर्ष मात्र है। असली स्थिति बहुत भयावह है। कम शब्दों में कहा जाए तो जो ज़हर लोग लगातार पी रहे हैं वह न केवल बड़ी संख्या में लोगों की जान ले रहा है बल्कि ये घटनाएँ आने वाले भयानक आपदा का संकेत हैं।** 3 जनवरी को नगर निगम द्वारा जीवाणु परीक्षण के लिए भागीरथपुरा से एकत्र किए गए 51 नमूनों में से 35 में मल कोलीफॉर्म जीवाणु की मात्रा पाई गई। यह मात्रा 13 से 360 प्रति मिलीलीटर तक थी जबकि भारतीय मानकों के अनुसार सुरक्षित मानी जाने वाली संख्या शून्य है। एक शोध पत्र के अनुसार, इन्दौर में 20 प्रतिशत गन्दा पानी सीधे जलस्रोतों में छोड़ दिया जाता है, जबकि 80 प्रतिशत सीवर लाइनें या तो अवरुद्ध हैं या उनका पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। 2019 में प्रकाशित एक सरकारी आँकड़े के अनुसार, राज्य के दो सबसे बड़े शहरों—भोपाल और इन्दौर—में केवल 56 प्रतिशत परिवारों के पास ही नल कनेक्शन थे। नतीजतन, 2018 तक इन दोनों शहरों में पानी से फैलने वाली बीमारियों के 5.45 लाख मामले आधिकारिक रूप से दर्ज किये गये।

इसी तरह, **गुजरात में 'नल से जल' योजना के बड़े-बड़े खण्डों के बीच केन्द्रीय जल शक्ति मन्त्रालय की रसोई रिपोर्ट (आकलन रिपोर्ट) ने कड़वी सच्चाई को उजागर किया है। रिपोर्ट के अनुसार, गुजरात के 43 प्रतिशत घरों में ही नलों में पीने लायक शुद्ध पानी पहुँच रहा है, जिसका अर्थ है कि 57 प्रतिशत आबादी तक अभी भी साफ पानी नहीं पहुँच रहा है।** गुजरात में वॉटर क्वालिटी इण्डेक्स (जल गुणवत्ता सूचकांक) पूरे देश में 30वें स्थान पर है, जो राज्य की स्वास्थ्य सुरक्षा पर गम्भीर सवाल खड़ा करता है। गाँधीनगर जैसे विकसित शहरों में भी यही स्थिति है, जहाँ क्रमशः 31.9% और 46.1% घरों में ही शुद्ध पेयजल की आपूर्ति हो रही है।

प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के अनुसार बीओडी और कोली फॉर्म के आधार पर गुजरात का स्कोर अन्य पिछड़ा राज्य श्रेणी के राज्यों की तुलना में भी कम आ रहा है। बनासकांठा और दाहोद में तो स्थिति और भी बुरी है जहाँ एक भी घर में नल के माध्यम से पीने योग्य पानी नहीं मिल रहा है। यहाँ भी यह घटना 24×7 पानी सप्लाई परियोजना में 257 करोड़ रुपये के निवेश के बाद हुई है, जिसके तहत सीवर लाइनों के पास नई पानी की पाइपलाइनें बिछाई गई थीं।

इन्दौर और गुजरात की स्थिति जानने के बाद अब ज़रा देश की स्थिति पर नज़र डाली जाए। भारत में दुनिया की 18 प्रतिशत आबादी रहती है, लेकिन दुनियाभर में मौजूद ताजे पानी के स्रोत में से सिर्फ़ 4 प्रतिशत ही भारत में हैं। ये स्रोत भी समय और खपत के साथ तेजी से कम हो रहे हैं। इतने कम स्रोतों का असर है कि भारत की एक बड़ी आबादी ऐसा पानी पीने को मजबूर है जो जानलेवा साबित हो रहा है। देश में सतह पर मौजूद 70 प्रतिशत पानी ऐसा है जिसे पिया नहीं जा सकता है। नीति आयोग की कम्पोजिट वाटर रिसोर्स मैनेजममेण्ट रिपोर्ट, 2023 के मुताबिक, भारत के 82 करोड़ लोगों के पास पानी की उपलब्धता 1000 मीटर क्यूब या इससे कम है जबकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर 1700 मीटर क्यूब प्रति साल को जल संकट माना जाता है। पीने के साफ़ पानी की अनुपलब्धता के चलते भारत में हर साल औसतन दो लाख लोगों की मौत हो जाती है। भारत दुनिया का ऐसा देश है जहाँ भूजल का इस्तेमाल सबसे ज़्यादा होता है। देश के 87 प्रतिशत भूजल का इस्तेमाल सिंचाई के लिए और 11 प्रतिशत पानी की इस्तेमाल घरेलू कामों के लिए होता है। ऐसे में ज़मीन के नीचे के पानी में इस तरह के प्रदूषकों का पाया जाना ख़तरनाक है।

केन्द्रीय भूमि जल बोर्ड (CGWB) की 2025 की रिपोर्ट बताती है कि भारत में लगभग 20 प्रतिशत भूजल ऐसा है जिसमें नाइट्रेट, यूरेनियम और आर्सेनिक जैसे ख़तरनाक तत्व पाए गए हैं। यह रिपोर्ट बताती है कि देशभर में पानी को प्रदूषित करने वाला सबसे बड़ा केमिकल कैल्शियम बाई कार्बोनेट (CaHCO3) है। इस रिपोर्ट के मुताबिक़, साल 2023 में कुल 15259 सैम्पल लिए गए। इनमें से 20.7 प्रतिशत सैम्पल में नाइट्रेट की मात्रा BIS के मानक यानी 45 मिलीग्राम प्रति लीटर से ज़्यादा थी। भारत के 56 प्रतिशत जिले ऐसे हैं जहाँ के भूजल में नाइट्रेट की मात्रा सुरक्षित से ज़्यादा है। राजस्थान, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे राज्यों में यह मात्रा काफी ज़्यादा है। पश्चिम बंगाल, झारखण्ड , बिहार, उत्तर प्रदेश, असम और मणिपुर राज्यों के सैम्पल में आर्सेनिक पाया गया। देश के 263 जिले ऐसे हैं जहाँ के भूजल में फ्लोराइड तक पाया गया। 'जल शक्ति मन्त्रालय' की वेबसाइट पर उपलब्ध डेटा के मुताबिक़ देश के 1668 गाँव ऐसे हैं जिनके पानी में ख़तरनाक आर्सेनिक पाया गया है। इसी तरह 12338 गाँवों के पानी में आयरन, 431 गाँवों में सल्फेट, 3460 गाँवों में फ्लुओराइड और 8379 गाँवों के पानी में नाइट्रेट पाया गया। 1650 गाँवों का पानी pH और 2516 गाँवों का पानी TDS के मानकों पर खरा नहीं उतरता। अगर बैक्टीरिया वाले प्रदूषण की बात करें तो 17394 गाँवों के पानी में टोटल कोलीफॉर्म (मल वाले जीवाणु) पाए गए, जिसे पीने का मतलब है बीमार पड़ना। 'केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड' (CBCB) की 2025 की रिपोर्ट बताता है कि नेशनल वाटर क्वालिटी मॉनीटरिंग प्रोग्राम (NWMP) के तहत देश की 645 नदियों में 2155 जगहों पर पानी की गुणवत्ता की जाँच से पता चला कि नदियों में 804 जगहों का पानी नहाने लायक नहीं था क्योंकि इस पानी में बायोलॉजिकन ऑक्सीजन डिमाण्ड (BOD) मानक से ज़्यादा थी। इसे 3 मिलीग्राम प्रति लीटर से कम होना चाहिए। वैश्विक स्तर पर देखा जाए तो वाटर क्वालिटी इण्डेक्स में कुल 122 देशों में भारत 120वें नम्बर पर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की रिपोर्ट बताती है कि साल 2022 में दुनियाभर के 170 करोड़ लोगों ने ऐसे स्रोतों का पानी पिया जो दूषित थे।

भारत के शहर हर दिन भारी मात्रा में अपशिष्ट जल उत्पन्न करते हैं। नीति आयोग के अनुमानों के अनुसार, 2020-21 के दौरान शहरी क्षेत्रों में लगभग 72,368 मिलियन लीटर प्रति दिन (MLD) अपशिष्ट जल उत्पन्न हुआ। इस अपशिष्ट जल का लगभग 72% अनुपचारित रहता है और नदियों, झीलों या भूजल में छोड़ दिया जाता है। इससे हैजा, दस्त, पेचिश, हेपेटाइटिस ए, टाइफाइड और पोलियो जैसी बीमारियों का ख़तरा बढ़ जाता है, ख़ासकर घनी आबादी वाली शहरी बस्तियों में। इसके अलावा पुरानी पाइपलाइन, रेगुलर मेंटेनेंस की कमी, और नई ट्रीटमेण्ट सुविधाओं आदि की कमी और सरकारी भ्रष्टाचार के करण यह स्थिति और भी भयंकर हो जाती है। इस स्थिति के बारे में पूँजीवादी उत्पादन के शुरुआती दौर में ही मार्क्स ने लन्दन में टेम्स नदी में बढ़ते प्रदूषण के बारे में लिखा था – "लन्दन में वे यानी नीति-नियन्ता इससे बेहतर कुछ नहीं कर ही नहीं सकते कि 45 लाख लोगों के मलमूत्र को काफी पैसा ख़र्च कर पर टेम्स नदी में मिलने दें।"

आखिर इस स्थिति के कौन ज़िम्मेदार है? मज़दूरों और मेहनतकशों को यह साफ़ समझ लेना चाहिए पेयजल की इस बुरी स्थिति, पानी से होने वाली बीमारियों और मौतों की जड़ में मौजूदा मानवद्रोही फ़ासीवादी सरकार की आपराधिक लापरवाही और मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था है। वास्तव में पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमशक्ति का शोषण और प्रकृति का भयानक दोहन आम नियम है। जिस तरह श्रमशक्ति की लूट और प्रकृति का अन्धाधुन्ध दोहन पूँजीवादी व्यवस्था का आम नियम है उसी तरह औसत मुनाफ़े की दर में कमी की समस्या (आर्थिक संकट) भी पूँजीवादी उत्पादन के नियमों से ही जन्म लेने वाली आम समस्या है। वर्तमान दौर में भारत समेत विश्व पूँजीवादी व्यवस्था दीर्घकालिक आर्थिक संकट के दौर

(पेज 10 पर जारी)

"…इसलिए पूँजीवादी उत्पादन प्रौद्योगिकी का विकास करता है, और विभिन्न प्रक्रियाओं को एक सामाजिक समग्रता में संयोजित करता है, लेकिन यह केवल सम्पदा के मूल स्रोतों – मिट्टी और मज़दूर – को सोखकर करके ही ऐसा करता है।"

– कार्ल मार्क्स

"कोई कारख़ानेदार अथवा व्यापारी जब तक सामान्य इच्छित मुनाफ़े पर किसी उत्पादित अथवा खरीदे माल को बेचता है वह खुश रहता है और इस की चिन्ता नहीं करता कि बाद में माल और उस के खरीददारों का क्या होता है। इस क्रियाकलाप के प्राकृतिक प्रभावों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। जब क्यूबा में स्पेनी बागान मालिकों ने पर्वतों की ढलानों पर खड़े जंगलों को जला डाला और उन की राख से अत्यन्त लाभप्रद कहवा-वृक्षों की केवल एक पीढ़ी के लिए पर्याप्त खाद हासिल की, तब उन्हें इस बात की परवाह न हुई कि बाद में उष्णप्रदेशीय भारी वर्षा मिट्टी की अरक्षित परत को बहा ले जाएगी और नंगी चट्टाने ही छोड़ देगी! जैसे समाज के सम्बन्ध में वैसे ही प्रकृति के सम्बन्ध में भी वर्तमान उत्पादन-प्रणाली मुख्यतया केवल प्रथम, तात्कालिक परिणाम भर से मतलब रखती है। फिर हैरानी जताई जाती है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये गये क्रियाकलाप के दूरवर्ती प्रभाव दूसरे ही प्रकार के, बल्कि मुख्यतया बिलकुल उलटे ही प्रकार के होते हैं।"

– फ्रेडरिक एंगेल्स

(वानर से नर बनने में श्रम की भूमिका)

ट्रम्प के ज़रिये उजागर हो रहा है साम्राज्यवाद का बर्बर मानवद्रोही चेहरा

(पेज 16 से आगे)

की साम्राज्यवाद-विरोधी रणनीति के बारे में बड़े सवाल खड़े करती है। अमेरिकी नौसेना पिछले कई महीनों से कैरेबियन सागर में अपनी तैनाती कर रही थी और वेनेज़ुएला से जाने वाले तेल के जहाज़ों पर हमले कर रही थी। यह स्पष्ट था कि अमेरिका कभी भी वेनेज़ुएला पर सीधा हमला कर सकता है। इसके बावजूद अभी तक वेनेज़ुएला की सरकार ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि सम्भावित अमेरिकी साम्राज्यवादी हमले से निपटने के लिए क्या कोई तैयारी थी और अगर थी तो आख़िर चूक कहाँ हुई।

बॉलिवेरियन क्रान्ति का भविष्य

वेनेज़ुएला की मौजूदा सरकार के समझौतापरस्त रवैये से इतना तो स्पष्ट दिख रहा है कि तथाकथित बोलिवेरियन क्रान्ति जो ढाई दशक पहले ह्यूगो चावेज़ के करिश्माई नेतृत्व में शुरू हुई थी वह एक भँवरजाल में जा फँसी है। यह क्रान्ति वेनेज़ुएला में दशकों तक अमेरिकी साम्राज्यवादी हस्तक्षेप के ख़िलाफ़ जनविद्रोह की अभिव्यक्ति थी। वैसे तो 1914 में तेल की खोज होने से पहले से ही वेनेज़ुएला में पहले स्पेनी और फिर अमेरिकी साम्राज्यवाद की दख़ल रही थी परन्तु तेल की खोज होने के बाद अमेरिकी साम्राज्यवाद ने वेनेज़ुएला पर ख़ास निशाना साधा। उसके बाद दशकों तक वेनेज़ुएला में तानाशाहों की सत्ता रही जिनके ज़रिये अमेरिकी साम्राज्यवाद ने उस देश के तेल संसाधनों पर अपना नियन्त्रण बनाये रखा। 1958 में वहाँ एक जनबग़ावत हुई जिसकी बदौलत मारकोस पेरेज़ हिमेनेज़ नामक तानाशाह की सत्ता का पतन हुआ और एक सीमित लोकतन्त्र की स्थापना हुई। 1970 के दशक में वैश्विक तेल संकट के दौर में वेनेज़ुएला ने तेल के क्षेत्र का राष्ट्रीयकरण किया। परन्तु उसके बाद भी वेनेज़ुएला की अर्थव्यवस्था आर्थिक संकट और भ्रष्टाचार के भँवर में फँसी रही। 1989 में वेनेज़ुएला के तत्कालीन राष्ट्रपति कार्लोस आन्द्रेस पेरेज़ ने आईएमएफ़ द्वारा निर्देशित ढाँचागत समायोजन की नवउदारवादी नीतियों को लागू करने की शुरुआत की जिसके तहत कल्याणकारी नीतियों में कटौती, निजीकरण और मौद्रिक अवमूल्यन किया गया। इन नीतियों के लागू होने के बाद बढ़ती महँगाई और आर्थिक तंगी की वजह से वेनेज़ुएला में एक बार फिर से जनविद्रोह फूट पड़ा जिसे 'काराकाज़ो' का नाम दिया गया।

1998 में भारी बहुमत से ह्यूगो चावेज़ का सत्ता में आना इसी जनविद्रोह का ही नतीजा था। सत्ता में आने के बाद चावेज़ की सरकार ने नया संविधान बनाया जो जनपक्षधर था और जनता को व्यापक अधिकार देता था। चावेज़ ने तमाम कल्याणकारी नीतियों को भी लागू करने की शुरुआत की। इन जनपक्षधर क़दमों से चावेज़ अमेरिकी साम्राज्यवाद के आँख की किरकिरी बन गये। 2002 में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने चावेज़ की सत्ता को अपदस्थ करने की साज़िश रची और जो चावेज़ के समर्थन में उमड़े जनसैलाब की वजह से अन्ततः नाकाम रही। उसके बाद चावेज़ सरकार द्वारा विदेशी तेल कम्पनियों को देश निकाला देने, कुछ निजी कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण करने, कुछ इलाक़ों में ज़मीन का सामूहिकीकरण करके कम्यून स्थापित करने, निःशुल्क शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास मुहैया कराने और शासन-प्रशासन में जन-भागीदारी बढ़ाने के लिए तमाम जन-संस्थाओं का निर्माण करने जैसे कई जनपक्षधर क़दम उठाये थे। इन क़दमों के बाद वेनेज़ुएला में चावेज़ की सत्ता को इक्कीसवीं सदी के समाजवाद का मॉडल कहा जाने लगा था। हालाँकि हकीक़त यह थी कि वह समाजवाद का कोई मॉडल नहीं था क्योंकि चावेज़ के समय भी वहाँ निजी पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों का शोषण करके मुनाफ़ा कमाने पर कोई रोक नहीं लगायी गयी थी और निजी सम्पत्ति का उन्मूलन करने की कोई योजना नहीं थी। इसलिए चावेज़ की सत्ता को किसी भी प्रकार से सर्वहारा का अधिनायकत्व यानी समाजवादी सत्ता नहीं कहा जा सकता था। इसके अलावा चावेज़ की पार्टी 'फ़िफ्थ रिपब्लिक मूवमेण्ट' (एमवीआर') जिसका 2007 में 'यूनाइटेड सोशिलिस्ट पार्टी ऑफ़ वेनेज़ुएला' में विलय हो गया, कोई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी भी नहीं है। दरअसल चावेज़ की सत्ता वेनेज़ुएला के तेल राजस्व का इस्तेमाल जनता के पक्ष में करने का कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य का ही एक ख़ास क़िस्म का मॉडल था जिसमें समाजवाद के कुछ तत्व मौजूद थे और जिसे अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रति अपने सुसंगत विरोध के चलते जनता का समर्थन भी प्राप्त था। चावेज़ के पास वेनेज़ुएला की अर्थव्यवस्था की तेल पर अतिशय निर्भरता को कम करने की भी कोई योजना नहीं थी। परन्तु इसमें कोई दो राय नहीं कि चावेज़ के दौर में वेनेज़ुएला 21वीं सदी में साम्राज्यवाद-विरोध का झण्डा समझौताहीन ढंग से थामे हुए था।

2013 में चावेज़ की असामयिक मृत्यु के बाद मादुरो द्वारा सत्ता सँभालने के बाद से ही 'बॉलिवेरियन क्रान्ति' अपने ढलान की ओर बढ़ने लगी थी। 2014 में विश्व बाज़ार में तेल की क़ीमतों में हुई भारी गिरावट ने वेनेज़ुएला की अर्थव्यवस्था की कमर तोड़कर रख दी। उसके बाद से वेनेज़ुएला की अर्थव्यवस्था संकट से गुज़र रही है और बेरोज़गारी व महँगाई लगातार बढ़ती गयी है। अमेरिका द्वारा लगायी गयी पाबन्दियों ने भी वेनेज़ुएला की अर्थव्यवस्था की हालत बद से बदतर करने में योगदान दिया। पिछले एक दशक के दौरान वेनेज़ुएला से लाखों लोग देश छोड़ने को मजबूर हुए हैं। मादुरो ने चावेज़ की कई नीतियों को पलटते हुए सरकारी कम्पनियों के निजीकरण को बढ़ावा दिया और सामूहिक खेती की व्यवस्था समाप्त कर निजी खेती पर बल दिया। शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास में भी निजीकरण को बढ़ावा दिया गया। यही नहीं मादुरो के शासन काल में ही शेवरान जैसी अमेरिकी कम्पनियों पर लगा प्रतिबन्ध वापस ले लिया गया था। इस प्रकार चावेज़ के दौर में वेनेज़ुएला में समाजवाद के जो थोड़े-बहुत तत्व मौजूद थे उनकी भी मादुरो के दौर में तिलांजलि दे दी गयी। आर्थिक क्षेत्र के अलावा मादुरो के शासन काल में वेनेज़ुएला में शासन-प्रशासन के निकायों और तमाम संस्थाओं में जनता की भागीदारी और चौकसी में भी कमी आयी है जिसकी वजह से वहाँ नौकरशाही और भ्रष्टाचार की प्रवृत्तियाँ भी तेज़ी से बढ़ी हैं। ऐसे में अगर मादुरो की सत्ता अमेरिकी साम्राज्यवादी हमले को रोकने के लिए कोई कारगर क़दम नहीं उठा पायी तो इसमें ताज्जुब की बात नहीं है।

अगर वेनेज़ुएला की मौजूदा सरकार अपने देश पर अमेरिकी क़ब्ज़े के ख़िलाफ़ कारगर प्रतिरोध न कर पाये तब भी वेनेज़ुएला सहित समूचे लातिन अमेरिका की जनता ख़ामोश नहीं बैठेगी। जिस प्रकार लातिन अमेरिका के लोग अतीत में साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ बहादुरी से लड़ते आये हैं उसी प्रकार आने वाले दिनों में भी उनके प्रतिरोध के नये अध्याय रचे जायेंगे। ट्रम्प के नेतृत्व में अमेरिकी साम्राज्यवाद की आक्रामकता समूचे महाद्वीप में जनसंघर्षों की आग में घी डालने का काम करेगी और साथ ही साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ दुनियाभर में जन प्रतिरोध भी बढ़ने ही वाला है। जिस प्रकार ग़ाज़ा में साम्राज्यवाद की शह पर ज़ायनवादियों द्वारा की जा रही बर्बरता के ख़िलाफ़ दुनियाभर में साम्राज्यवाद की छीछालेदर हो रही है, उसी प्रकार आने वाले दिनों में लातिन अमेरिका में बढ़ती अमेरिकी साम्राज्यवादी दादागिरी के ख़िलाफ़ भी दुनियाभर में जनसैलाब सड़कों पर दिखायी देना तय है। स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद की बढ़ती आक्रामकता उसके घटते वर्चस्व की निशानी है। मज़दूर वर्ग को साम्राज्यवाद के संकट की इस परिस्थिति का लाभ उठाकर आम मेहनतकश जनता के बीच साम्राज्यवाद-विरोधी प्रचार को तेज़ करके साम्राज्यवाद के विकल्प के रूप में समाजवाद को स्थापित करने का आह्वान करने की ज़रूरत है।

मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था, फ़ासिस्ट सरकार और पानी में फैलता ज़हर

(पेज 9 से आगे)

से गुज़र रही है। मुनाफ़े की औसत दर को बरक़रार रखने के लिए पूँजीपति वर्ग श्रमशक्ति की लागत को घटाने के अलावा प्रकृति के अन्धाधुन्ध दोहन के रास्ते में प्रकृति के संरक्षण से सम्बन्धित क़ानूनों से भी मुक्त होने की पूरी कोशिश करता है ताकि इस ख़र्च से भी वो पल्ला झाड़ सके। (वैसे तो क़ानून होने पर भी पूँजीपति वर्ग शासक वर्ग से साठ-गाँठ कर अवैध तरीक़े से प्रकृति संरक्षण सम्बन्धी क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाता रहता है।) मोदी सरकार और विभिन्न राज्यों में भाजपा सरकार द्वारा पुराने श्रम क़ानूनों में संशोधन कर 'चार लेबर कोड' लागू करने के पीछे यही मंशा है। इसके ज़रिये प्रकृति के संरक्षण सम्बन्धी क़ानूनों को पूँजीपतियों के भरोसे छोड़ दिया गया है। जिन मामलों में उल्लंघन करने पर पूँजीपतियों को कड़ी सज़ा का प्रावधान था, उसे मामूली जुर्माने में बदल दिया है। यानी अब पूँजीपति वर्ग प्रकृति के संरक्षण के सम्बन्ध में होने वाले ख़र्चों से फ़ारिग़ हो गया। पूँजीपति उत्पादन की मूल प्रेरक शक्ति तात्कालिक मुनाफ़ा है, भले ही प्रकृति पूरी तरह तबाह-बर्बाद हो जाए। इसी मुनाफ़े की हवस को अबाध तौर पर पूरा करने के लिए ही पूँजीपतियों ने फ़ासीवादी भाजपा को सत्ता में पहुँचाया था और अब फ़ासीवादी भाजपा इस काम को ब-ख़ूबी अंजाम दे रही है। मेहनतकश आबादी की लूट पहले से काफ़ी तेज़ कर दी गयी है। प्रकृति का अवैज्ञानिक अन्धाधुन्ध दोहन करने के लिए पूँजीपति वर्ग को छूट दे दी गयी है। चूँकि फ़ासीवादी भाजपा ने राज्य मशीनरी को अन्दर से कब्ज़ा कर लिया है इसलिए उनके इस कुकृत्य पर न्यायालय जैसी संस्थाओं का भी कोई नियन्त्रण नहीं है। उलटे उच्चतम न्यायालय के अरावली से लेकर तमाम जंगलों के कटने के मामले में सरकार के समर्थन में फ़ैसले या चुप्पी सच्चाई का बयान करने के लिए काफ़ी है। बाकी काम फ़ासीवादी भाजपा काले क़ानून, डण्डे के ज़ोर और जनता के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के ज़रिये कर लेती है।

मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था मेहनत की लूट और प्रकृति की बर्बादी के ज़रिये मेहनतकशों पर दोहरा हमला करती है। प्रकृति की बर्बादी सबसे अधिक मेहनतकश जनता के जीवन पर बुरा असर डालती है। अत्यधिक मेहनत से कमज़ोर पड़े मेहनतकशों का प्रदूषित हवा-पानी और बदहाल स्वास्थ्य सेवाएँ कचूमर निकाल देती है। मेहनतकश बेमौत मारे जाते हैं। हालाँकि प्रदूषण की मार से मेहनतकश तबके के अलावा अन्य वर्ग भी प्रभावित होते हैं और इस मसले पर वह भी सड़कों पर उतरता है। लेकिन उसकी वर्गीय दृष्टि उसे प्रकृति की बर्बादी के असली कारणों से यानी पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के कार्यभार तक नहीं ले जाती। मेहनतकश आबादी को यह समझना ही होगा कि साफ़ पानी, साफ़ हवा, बेहतर निःशुल्क स्वास्थ्य सेवा उनका बुनियादी अधिकार है। प्रकृति को बचाने की लड़ाई में अन्य वर्गों को साथ (ज़ाहिरा तौर पर शोषक-शासक वर्ग को छोड़कर) लेकर तात्कालिक मुद्दों पर लड़ने के अलावा मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़कर मानवकेन्द्रित समाजवादी व्यवस्था का निर्माण ही एक मात्र रास्ता है।

हड़तालों के बारे में

• व्ला. इ. लेनिन

(पिछले कुछ दशकों के दौरान देशभर में मज़दूरों ने कई बार हड़तालें की हैं। जहाँ भी औद्योगिक इलाक़े हैं वहाँ से मज़दूरों की छोटी-बड़ी हड़तालों की ख़बरें आती रहती हैं। मज़दूर अधिकारों पर बढ़ते हमलों के मुक़ाबले मज़दूर स्वतःस्फूर्त ढंग से, यानी बिना किसी योजना व संगठित तैयारी के हड़ताल करते हैं और प्रायः उन्हें पूँजी और सरकार की संगठित ताक़त के सामने हार का सामना करना पड़ता है। दूसरी ओर, विभिन्न चुनावबाज़ पार्टियों से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें सालाना अनुष्ठान की तरह हर साल एक-दो दिन की हड़तालें करती आ रही हैं लेकिन उनसे मज़दूरों पर होने वाले हमलों पर रत्तीभर भी फ़र्क़ नहीं पड़ा है। इसलिए ज़रूरी है कि मज़दूर अपनी लड़ाई के इस हथियार का सही ढंग से इस्तेमाल करने के बारे में सीखें। इसी उद्देश्य से हम मज़दूर वर्ग के महान क्रान्तिकारी नेता और शिक्षक व्लादीमिर लेनिन का यह लेख इस समय प्रकाशित कर रहे हैं जब नरेन्द्र मोदी की सरकार ने अपने आक़ा पूँजीपति वर्ग की ओर से मज़दूर वर्ग के अधिकारों पर अबतक का सबसे बड़ा हमला बोल दिया है। – सम्पादक)

इधर कुछ वर्षों से रूस में मज़दूरों की हड़तालें बारम्बार हो रही हैं। एक भी ऐसी औद्योगिक गुबेर्निया नहीं है, जहाँ कई हड़तालें न हुई हों। और बड़े शहरों में तो हड़तालें कभी रुकती ही नहीं। इसलिए यह बोधगम्य बात है कि वर्ग-सचेत मज़दूर तथा समाजवादी हड़तालों के महत्व, उन्हें संचालित करने की विधियों तथा उनमें भाग लेने वाले समाजवादियों के कार्यभारों के प्रश्न में अधिकाधिक सतत रूप में दिलचस्पी लेते हैं। हम यहाँ इन प्रश्नों के विषय में अपने विचारों की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। अपने पहले लेख में हमारी योजना आमतौर पर मज़दूर वर्ग आन्दोलन में हड़तालों के महत्व की चर्चा करने की है; दूसरे लेख में हम रूस में हड़ताल-विरोधी क़ानूनों की चर्चा करेंगे तथा तीसरे में इस बात की चर्चा करेंगे कि रूस में हड़तालें किस तरह की जाती थीं और की जाती हैं तथा उनके प्रति वर्ग-सचेत मज़दूरों को क्या रुख़ अपनाना चाहिए:-

1

सबसे पहले हमें हड़तालों के शुरू होने और फैलने का कारण ढूँढ़ना चाहिए। यदि कोई आदमी हड़तालों को याद करेगा, जिनकी उसे व्यक्तिगत अनुभव से, दूसरों से सुनी रिपोर्टों या अख़बारों की ख़बरों के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई हो, तो वह तुरन्त देख लेगा कि जहाँ कहीं बड़ी फ़ैक्टरियाँ हैं तथा उनकी संख्या बढ़ती जाती है, वहाँ हड़तालें होती तथा फैलती हैं। सैकड़ों (कभी-कभी हज़ारों तक) लोगों को काम पर रखने वाली बड़ी फ़ैक्टरियों में एक भी ऐसी फ़ैक्टरी ढूँढ़ना सम्भव नहीं होगा, जहाँ हड़तालें न हुई हों। जब रूस में केवल चन्द बड़ी फ़ैक्टरियाँ थीं, तो हड़तालें भी कम होती थीं। परन्तु जब से बड़े औद्योगिक ज़िलों और नये नगरों तथा गाँवों में बड़ी फ़ैक्टरियों की तादाद बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही है, हड़तालें बारम्बार होने लगी हैं। क्या कारण है कि बड़े पैमाने का फ़ैक्टरी उत्पादन हमेशा हड़तालों को जन्म देता है? इसका कारण यह है कि पूँजीवाद मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों के संघर्ष को लाज़िमी तौर पर जन्म देता है तथा जहाँ उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है, वहाँ संघर्ष अनिवार्य ढंग से हड़तालों का रूप ग्रहण करता है।

आइए, इस पर प्रकाश डालें। पूँजीवाद नाम उस सामाजिक व्यवस्था को दिया गया है, जिसके अन्तर्गत ज़मीन, फ़ैक्टरियाँ, औज़ार आदि पर थोड़े-से भूस्वामियों तथा पूँजीपतियों का स्वामित्व होता है, जबकि जनसमुदाय के पास कोई सम्पत्ति नहीं होती या बहुत कम होती है तथा वह उजरती मज़दूर बनने के लिए बाध्य होता है। भूस्वामी तथा फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरों को उजरत पर रखते हैं और उनसे इस या उस क़िस्म का माल तैयार कराते हैं, जिसे वे मण्डी में बेचते हैं। इसके अलावा फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरों को केवल इतनी मज़दूरी देते हैं, जो उनके तथा उनके परिवारों के मात्र निर्वाह की व्यवस्था करती है, जबकि इस परिमाण से ऊपर मज़दूर जितना भी पैदा करता है, वह फ़ैक्टरी मालिक की जेब में उसके मुनाफ़े के रूप में चला जाता है। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत जन समुदाय दूसरों का उजरती मज़दूर होता है, वह अपने लिए काम नहीं करता, अपितु मज़दूरी पाने के वास्ते मालिकों के लिए काम करता है। यह बात समझ में आने वाली है कि मालिक हमेशा मज़दूरी घटाने का प्रयत्न करते हैं : मज़दूरों को वे जितना कम देंगे, उनका मुनाफ़ा उतना ही अधिक होगा। मज़दूर अधिक से अधिक मज़दूरी हासिल करने का प्रयत्न करते हैं, ताकि अपने परिवारों को पर्याप्त और पौष्टिक भोजन दे सकें, अच्छे घरों में रह सकें, दूसरे लोगों की तरह अच्छे कपड़े पहन सकें तथा भिखारियों की तरह न लगें। इस प्रकार मालिकों तथा मज़दूरों के बीच मज़दूरी की वजह से निरन्तर संघर्ष चल रहा है; मालिक जिस किसी मज़दूर को उपयुक्त समझता है, उसे उजरत पर हासिल करने के लिए स्वतन्त्र है, इसलिए वह सबसे सस्ते मज़दूर की तलाश करता है। मज़दूर अपनी मर्ज़ी के मालिक को अपना श्रम उजरत पर देने के लिए स्वतन्त्र है, इस तरह वह सबसे महँगे मालिक की तलाश करता है, जो उसे सबसे ज़्यादा देगा। मज़दूर चाहे देहात में काम करे या शहर में, वह अपना श्रम उजरत पर चाहे ज़मीन्दार को दे या धनी किसान को, ठेकेदार को अथवा फ़ैक्टरी मालिक को, वह हमेशा मालिक के साथ मोल-भाव करता है, मज़दूरी के लिए उससे संघर्ष करता है।

परन्तु क्या एक मज़दूर के लिए अकेले संघर्ष करना सम्भव है? मेहनतकश लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है : किसान तबाह हो रहे हैं तथा वे देहात से शहर या फ़ैक्टरी की ओर भाग रहे हैं। ज़मीन्दार तथा फ़ैक्टरी मालिक मशीनें लगा रहे हैं, जो मज़दूरों को उनके काम से वंचित करती रही हैं। शहरों में बेरोज़गारों की संख्या बढ़ रही है तथा गाँवों में अधिकाधिक लोग भिखारी बनते जा रहे हैं; जो भूखे हैं, वे मज़दूरी के स्तर को निरन्तर नीचे पहुँचा रहे हैं। मज़दूर के लिए अकेले मालिक से टक्कर लेना असम्भव हो जाता है। यदि मज़दूर अच्छी मज़दूरी माँगता है अथवा मज़दूरी में कटौती से असहमत होने का प्रयत्न करता है, तो मालिक उसे बाहर निकल जाने के लिए कहता है, क्योंकि दरवाज़े पर बहुत-से भूखे लोग खड़े होते हैं, जो कम मज़दूरी पर काम करने के लिए सहर्ष तैयार हो जायेंगे। जब लोग इस हद तक तबाह हो जाते हैं कि शहरों और गाँवों में बेरोज़गारों की हमेशा बहुत बड़ी तादाद रहती है, जब फ़ैक्टरी मालिक अथाह मुनाफ़े खसोटते हैं तथा छोटे मालिकों को करोड़पति बाहर धकेल देते हैं, तब व्यक्तिगत रूप से मज़दूर पूँजीपति के सामने सर्वथा असहाय हो जाता है। तब पूँजीपति के लिए मज़दूर को पूरी तरह कुचलना, दास मज़दूर के रूप में उसे और निस्सन्देह अकेले उसे ही नहीं, वरन उसके साथ उसकी पत्नी तथा बच्चों को भी मौत की ओर धकेलना सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम उन व्यवसायों को लें, जिनमें मज़दूर अभी तक क़ानून का संरक्षण हासिल नहीं कर सकते हैं तथा जिनमें वे पूँजीपतियों का प्रतिरोध नहीं कर सकते, तो हम वहाँ असाधारण रूप से लम्बा कार्य-दिवस देखेंगे, जो कभी-कभी 17 से लेकर 19 घण्टे तक का होता है, हम 5 या 6 वर्ष के बच्चों को कमरतोड़ काम करते हुए देखेंगे, हम स्थायी रूप से ऐसे भूखे लोगों की एक पूरी पीढ़ी देखेंगे, जो धीरे-धीरे भूख के कारण मौत के मुँह में पहुँच रहे हैं। उदाहरण हैं वे मज़दूर, जो पूँजीपतियों के लिए अपने घरों पर काम करते हैं; इसके अलावा कोई भी मज़दूर बीसियों दूसरे उदाहरणों को याद कर सकता है! दासप्रथा या भूदास प्रथा के अन्तर्गत भी मेहनतकश जनता का कभी इतना भयंकर उत्पीड़न नहीं हुआ, जितना कि पूँजीवाद के अन्तर्गत हो रहा है, जब मज़दूर प्रतिरोध नहीं कर पाते या ऐसे क़ानूनों का संरक्षण प्राप्त नहीं कर सकते, जो मालिकों की मनमानी कार्रवाइयों पर अंकुश लगाते हों। इस तरह अपने को इस घोर दुर्दशा में पहुँचने से रोकने के लिए मज़दूर व्यग्रतापूर्वक संघर्ष शुरू कर देते हैं। मज़दूर यह देखकर कि उनमें से हरेक व्यक्तिशः सर्वथा असहाय है तथा पूँजी का उत्पीड़न उसे कुचल डालने का ख़तरा पैदा कर रहा है, संयुक्त रूप से अपने मालिकों के विरुद्ध विद्रोह शुरू कर देते हैं। मज़दूरों की हड़तालें शुरू हो जाती हैं। आरम्भ में तो मज़दूर यह नहीं समझ पाते कि वे क्या हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं, उनमें इस बात की चेतना का अभाव होता है कि वे अपनी कार्रवाई किस वास्ते कर रहे हैं : वे महज़ मशीनें तोड़ते हैं तथा फ़ैक्टरियों को नष्ट करते हैं। वे फ़ैक्टरी मालिकों को महज़ अपना रोष दिखाना चाहते हैं; वे अभी यह समझे बिना कि उनकी स्थिति इतनी असहाय क्यों है तथा उन्हें किस चीज़ के लिए प्रयास करना चाहिए, असह्य स्थिति से बाहर निकलने के लिए अपनी संयुक्त शक्ति की आज़माइश करते हैं। तमाम देशों में मज़दूरों के रोष ने पहले छिटपुट विद्रोहों का रूप ग्रहण किया – रूस में पुलिस तथा फ़ैक्टरी मालिक उन्हें "ग़दर" के नाम से पुकारते हैं। तमाम देशों में इन छुटपुट विद्रोहों ने, एक ओर, कमोबेश शान्तिपूर्ण हड़तालों को और दूसरी ओर, अपनी मुक्ति हेतु मज़दूर वर्ग के चहुँमुखी संघर्ष को जन्म दिया। मज़दूर वर्ग के संघर्ष के लिए हड़तालों (काम रोकने) का क्या महत्व है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें पहले हड़तालों की पूरी तस्वीर हासिल करनी चाहिए। जैसाकि हम देख चुके हैं, मज़दूर की मज़दूरी मालिक तथा मज़दूर के बीच क़रार द्वारा निर्धारित होती है और यदि इन परिस्थितियों में निजी तौर पर मज़दूर पूरी तरह असहाय है, तो ज़ाहिर है कि मज़दूरों को अपनी माँगों के लिए संयुक्त रूप से लड़ना चाहिए, वे मालिकों को मज़दूरी घटाने से रोकने के लिए अथवा अधिक मज़दूरी हासिल करने के लिए हड़तालें संगठित करने के वास्ते बाधित होते हैं। यह एक तथ्य है कि पूँजीवादी व्यवस्था वाले हर देश में मज़दूरों की हड़तालें होती हैं। सर्वत्र, तमाम यूरोपीय देशों तथा अमरीका में मज़दूर ऐक्यबद्ध न होने पर अपने को असहाय पाते हैं; वे या तो हड़ताल करके या हड़ताल करने की धमकी देकर केवल संयुक्त रूप से ही मालिकों का प्रतिरोध कर सकते हैं। ज्यों-ज्यों पूँजीवाद का विकास होता जाता है, ज्यों-ज्यों फ़ैक्टरियाँ अधिकाधिक तीव्र गति से खुलती जाती हैं, ज्यों-ज्यों छोटे पूँजीपतियों को बड़े पूँजीपति बाहर धकेलते जाते हैं, मज़दूरों द्वारा संयुक्त प्रतिरोध किये जाने की आवश्यकता त्यों-त्यों तात्कालिक होती जाती है, क्योंकि बेरोज़गारी बढ़ती जाती है, पूँजीपतियों के बीच, जो सस्ती से सस्ती लागत पर अपना माल तैयार करने का प्रयास करते हैं (ऐसा करने के वास्ते उन्हें मज़दूरों को कम से कम देना होगा), प्रतियोगिता तीव्र होती जाती है तथा उद्योग में उतार-चढ़ाव अधिक तीक्ष्ण तथा संकट* अधिक उग्र होते जाते हैं। जब उद्योग फलता-फूलता है, फ़ैक्टरी मालिक बहुत मुनाफ़ा कमाते हैं, परन्तु वे उसमें मज़दूरों को भागीदार बनाने की बात नहीं सोचते। परन्तु जब संकट पैदा हो जाता है, तो फ़ैक्टरी मालिक नुक़सान मज़दूरों के मत्थे मढ़ने का प्रयत्न करते हैं। पूँजीवादी समाज में हड़तालों की आवश्यकता को यूरोपीय देशों में हरेक इस हद तक स्वीकार कर चुका है कि उन देशों में क़ानून हड़तालें संगठित किये जाने की मनाही नहीं करता; केवल रूस में ही हड़तालों के विरुद्ध भयावह क़ानून अब भी लागू हैं (इन क़ानूनों और उनके लागू किये जाने के बारे में हम किसी और मौक़े पर बात करेंगे)। कुछ भी हो, हड़तालें जो ठीक पूँजीवादी समाज के स्वरूप के कारण जन्म लेती हैं, समाज की उस व्यवस्था के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के संघर्ष की शुरुआत की द्योतक होती हैं। अमीर पूँजीपतियों का अलग-अलग, सम्पत्तिहीन मज़दूरों द्वारा सामना किया जाना मज़दूरों के पूर्ण दास बनने का द्योतक होता है। परन्तु जब ये ही सम्पत्तिहीन मज़दूर ऐक्यबद्ध हो जाते हैं, तो स्थिति बदल जाती है। यदि पूँजीपति ऐसे मज़दूर नहीं ढूँढ़ पायें, जो अपनी श्रम-शक्ति को पूँजीपतियों के औज़ारों और सामग्री पर लगाने और नयी दौलत पैदा करने के लिए तैयार हों, तो फिर कोई भी दौलत पूँजीपतियों के लिए लाभकर नहीं हो सकती। जब तक मज़दूरों को पूँजीपतियों के साथ निजी आधार पर सम्बन्ध रखना पड़ता है, वे ऐसे वास्तविक दास बने रहते हैं, जिन्हें रोटी का एक टुकड़ा हासिल कर सकने के लिए दूसरे को लाभ पहुँचाने के वास्ते निरन्तर काम करना होगा, जिन्हें हमेशा आज्ञाकारी तथा मूक उजरती नौकर बना रहना होगा। परन्तु जब मज़दूर संयुक्त रूप में अपनी माँग पेश करते हैं और थैलीशाहों के आगे झुकने से इन्कार करते हैं, तो वे दास नहीं रहते, वे इन्सान बन जाते हैं, वे यह माँग करने लगते हैं कि उनके श्रम से मुट्ठीभर परजीवियों का ही हितसाधन नहीं होना चाहिए, अपितु उसे इन लोगों को भी, जो काम करते हैं, इन्सानों की तरह जीवनयापन करने में सक्षम बनाना चाहिए। दास स्वामी बनने की माँग पेश करने लगते हैं – वे उस तरह काम करना और रहना नहीं चाहते, जिस तरह ज़मीन्दार और पूँजीपति चाहते हैं, बल्कि वे उस तरह काम करना और रहना चाहते हैं, जिस तरह स्वयं मेहनतकश जन

(पेज 12 पर जारी)

* हम उद्योग में संकटों तथा मज़दूरों के लिए उनके महत्त्व की अन्यत्र विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। हम यहाँ केवल इतना कहेंगे कि हाल के वर्षों में रूस में औद्योगिक स्थिति ठीक-ठाक रही है, उद्योग "फल-फूल" रहा है, परन्तु अब (1899 के अन्त में) इस बात के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे हैं कि इस "फलने-फूलने" का अन्त संकट के रूप में होगा : वस्तुओं की बिक्री में कठिनाइयाँ, फ़ैक्टरी मालिकों का दिवालिया होना, छोटे मालिकों का तबाह होना तथा मज़दूरों के लिए भयानक विपदाएँ (बेरोज़गारी, कम मज़दूरी, आदि)।

हड़तालों के बारे में

(पेज 11 से आगे)

चाहते हैं। हड़तालें इसलिए पूँजीपतियों में सदा भय पैदा करती हैं कि वे उनकी प्रभुता पर कुठाराघात करती हैं।

जर्मन मज़दूरों का एक गीत मज़दूर वर्ग के बारे में कहता है : "यदि चाहे तुम्हारी बलशाली भुजाएँ, हो जायेंगे सारे चक्के जाम"। और यह एक वास्तविकता है : फ़ैक्टरियाँ, ज़मीन्दार की ज़मीन, मशीनें, रेलें, आदि से एक विराट यन्त्र के चक्के की तरह हैं, उस यन्त्र की तरह, जो विभिन्न उत्पाद हासिल करता है, उन्हें परिष्कृत करता है तथा निर्दिष्ट स्थान को भेजता है। इस पूरे यन्त्र को गतिमान करता है मज़दूर, जो खेत जोतता है, खानों से खनिज पदार्थ निकालता है, फ़ैक्टरियों में माल तैयार करता है, मकानों, वर्कशॉपों और रेलों का निर्माण करता है। जब मज़दूर काम करने से इन्कार कर देते हैं, इस पूरे यन्त्र के ठप होने का ख़तरा पैदा हो जाता है। हरेक हड़ताल पूँजीपतियों को याद दिलाती है कि वे नहीं, वरन मज़दूर, वे मज़दूर वास्तविक स्वामी हैं, जो अधिकाधिक ऊँचे स्वर में अपने अधिकारों की घोषणा कर रहे हैं। हरेक हड़ताल मज़दूरों को याद दिलाती है कि उनकी स्थिति असहाय नहीं है, कि वे अकेले नहीं हैं। ज़रा देखें कि हड़तालों का स्वयं हड़तालियों पर तथा किसी पड़ोस की या नज़दीक की फ़ैक्टरियों में या एक ही उद्योग की फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों, दोनों पर कितना ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ता है। सामान्य, शान्तिपूर्ण समय में मज़दूर बड़बड़ाहट किये बिना अपना काम करता है, मालिक की बात का प्रतिवाद नहीं करता, अपनी हालत पर बहस नहीं करता। हड़तालों के समय वह अपनी माँगें ऊँची आवाज़ में पेश करता है, वह मालिकों को उनके सारे दुर्व्यवहारों की याद दिलाता है, वह अपने अधिकारों का दावा करता है, वह केवल अपने और अपनी मज़दूरी के बारे में नहीं सोचता, वरन अपने सारे साथियों के बारे में सोचता है, जिन्होंने उसके साथ-साथ औज़ार नीचे रख दिये हैं और जो तकलीफ़ों की परवाह किये बिना मज़दूरों के ध्येय के लिए उठ खड़े हुए हैं। मेहनतकश जनों के लिए प्रत्येक हड़ताल का अर्थ है बहुत सारी तकलीफ़ें, भयंकर तकलीफ़ें, जिनकी तुलना केवल युद्ध द्वारा प्रस्तुत विपदाओं से की जा सकती है – भूखे परिवार, मज़दूरी से हाथ धो बैठना, अक्सर गिरफ़्तारियाँ, शहरों से भगा दिया जाना, जहाँ उनके घर-बार होते हैं तथा वे रोज़गार पर लगे होते हैं। इन तमाम तकलीफ़ों के बावजूद मज़दूर उनसे घृणा करते हैं, जो अपने साथियों को छोड़कर भाग जाते हैं तथा मालिकों के साथ सौदेबाज़ी करते हैं। हड़तालों द्वारा प्रस्तुत इन सारी तकलीफ़ों के बावजूद पड़ोस की फ़ैक्टरियों के मज़दूर उस समय नया साहस प्राप्त करते हैं, जब वे देखते हैं कि उनके साथी संघर्ष में जुट गये हैं। अंग्रेज़ मज़दूरों की हड़तालों के बारे में समाजवाद के महान शिक्षक एंगेल्स ने कहा था : "जो लोग एक बुर्जुआ को झुकाने के लिए इतना कुछ सहते हैं, वे पूरे बुर्जुआ वर्ग की शक्ति को चकनाचूर करने में समर्थ होंगे।" बहुधा एक फ़ैक्टरी में हड़ताल अनेकानेक फ़ैक्टरियों में हड़तालों की तुरन्त शुरुआत के लिए पर्याप्त होती है। हड़तालों का कितना बड़ा नैतिक प्रभाव पड़ता है, कैसे वे मज़दूरों को प्रभावित करती हैं, जो देखते हैं कि उनके साथी दास नहीं रह गये हैं और, भले ही कुछ समय के लिए, उनका और अमीर का दर्जा बराबर हो गया है! प्रत्येक हड़ताल समाजवाद के विचार को, पूँजी के उत्पीड़न से मुक्ति के लिए पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष के विचार को बहुत सशक्त ढंग से मज़दूर के दिमाग़ में लाती है। प्राय: होता यह है कि किसी फ़ैक्टरी या किसी उद्योग की शाखा या शहर के मज़दूरों को हड़ताल के शुरू होने से पहले समाजवाद के बारे में पता ही नहीं होता और उन्होंने उसकी बात कभी सोची ही नहीं होती। परन्तु हड़ताल के बाद अध्ययन मण्डलियाँ तथा संस्थाएँ उनके बीच अधिक व्यापक होती जाती हैं तथा अधिकाधिक मज़दूर समाजवादी बनते जाते हैं।

हड़ताल मज़दूरों को सिखाती है कि मालिकों की शक्ति तथा मज़दूरों की शक्ति किसमें निहित होती है; वह उन्हें केवल अपने मालिक और केवल अपने साथियों के बारे में ही नहीं, वरन तमाम मालिकों, पूँजीपतियों के पूरे वर्ग, मज़दूरों के पूरे वर्ग के बारे में सोचना सिखाती है। जब किसी फ़ैक्टरी का मालिक, जिसने मज़दूरों की कई पीढ़ियों के परिश्रम के बल पर करोड़ों की धनराशि जमा की है, मज़दूरी में मामूली वृद्धि करने से इन्कार करता है, यही नहीं, उसे घटाने का प्रयत्न तक करता है और मज़दूरों द्वारा प्रतिरोध किये जाने की दशा में हज़ारों भूखे परिवारों को सड़कों पर धकेल देता है, तो मज़दूरों के सामने यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीपति वर्ग समग्र रूप में समग्र मज़दूर वर्ग का दुश्मन है और मज़दूर केवल अपने ऊपर और अपनी संयुक्त कार्रवाई पर ही भरोसा कर सकते हैं। अक्सर होता यह है कि फ़ैक्टरी का मालिक मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने, अपने को उपकारी के रूप में पेश करने, मज़दूरों के आगे रोटी के चन्द छोटे-छोटे टुकड़े फेंककर या झूठे वचन देकर उनके शोषण पर पर्दा डालने के लिए कुछ भी नहीं उठा रखता। हड़ताल मज़दूरों को यह दिखाकर कि उनका "उपकारी" तो भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िया है, इस धोखाधाड़ी को एक ही वार में ख़त्म कर देती है। इसके अलावा हड़ताल पूँजीपतियों के ही नहीं, वरन सरकार तथा क़ानूनों के भी स्वरूप को मज़दूरों की आँखों के सामने स्पष्ट कर देती है। जिस तरह फ़ैक्टरियों के मालिक अपने को मज़दूरों के उपकारी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं, ठीक उसी तरह सरकारी अफ़सर और उनके चाटुकार मज़दूरों को यह यक़ीन दिलाने का प्रयत्न करते हैं कि ज़ार तथा ज़ारशाही सरकार न्याय की अपेक्षानुसार फ़ैक्टरियों के मालिकों तथा मज़दूरों, दोनों का समान रूप से ध्यान रखते हैं। मज़दूर क़ानून नहीं जानता, उसका सरकारी अफ़सरों, ख़ास तौर पर ऊँचे पदाधिकारियों के साथ सम्पर्क नहीं होता, फलस्वरूप वह अक्सर इन सब बातों पर विश्वास कर लेता है। इतने में हड़ताल होती है। सरकारी अभियोजक, फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर, पुलिस और कभी-कभी सैनिक कारख़ाने में पहुँच जाते हैं। मज़दूरों को पता चलता है कि उन्होंने क़ानून तोड़ा है : मालिकों को क़ानून इकट्ठा होने और मज़दूरों की मज़दूरी घटाने और खुलेआम विचार-विमर्श करने की अनुमति देता है। परन्तु मज़दूर अगर कोई संयुक्त क़रार करते हैं, तो उन्हें अपराधी घोषित किया जाता है। मज़दूरों को उनके घरों से बेदख़ल किया जाता है, पुलिस उन दुकानों को बन्द कर देती है, जहाँ से मज़दूर खाने-पीने की चीज़ें उधार ले सकते हैं, उस समय भी जब मज़दूर का आचरण शान्तिपूर्ण होता है, सैनिकों को उनके ख़िलाफ़ भड़काने का प्रयत्न किया जाता है। सैनिकों को मज़दूरों पर गोली चलाने का आदेश दिया जाता है और जब वे भागती भीड़ पर गोली चलाकर निरस्त्र मज़दूरों को मार डालते हैं, तो ज़ार स्वयं सैनिकों के प्रति आभार-प्रदर्शन करता है (इस तरह ज़ार ने 1895 में यारोस्लाव्ल में हड़ताली मज़दूरों की हत्या करने वाले सैनिकों को धन्यवाद दिया था)। हर मज़दूर के सामने यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ज़ारशाही सरकार उसकी सबसे बड़ी शत्रु है, क्योंकि वह पूँजीपतियों की रक्षा करती है तथा मज़दूरों के हाथ-पाँव बाँध देती है। मज़दूर यह समझने लगते हैं कि क़ानून केवल अमीरों के हितार्थ बनाये जाते हैं, कि सरकारी अधिकारी उनके हितों की रक्षा करते हैं, कि मेहनतकश जनता की ज़ुबान बन्द कर दी जाती है, उसे इस बात की अनुमति नहीं दी जाती कि वह अपनी माँगें पेश करे, कि मज़दूर वर्ग को हड़ताल करने का अधिकार, मज़दूर समाचारपत्र प्रकाशित करने का अधिकार, क़ानून बनानेवाली और क़ानूनों को लागू करने के कार्य की देखरेख करने वाली राष्ट्रीय सभा में भाग लेने का अधिकार अवश्य हासिल करना होगा। सरकार ख़ुद अच्छी तरह जानती है कि हड़तालें मज़दूरों की आँखें खोलती हैं और इस कारण वह हड़तालों से डरती है तथा उन्हें यथाशीघ्र रोकने का प्रयत्न करती है। एक जर्मन गृहमन्त्री ने, जो समाजवादियों तथा वर्ग-सचेत मज़दूरों को निरन्तर सताने के लिए बदनाम था, जन प्रतिनिधियों के सामने यह अकारण ही नहीं कहा था : "हर हड़ताल के पीछे क्रान्ति का कई फनोंवाला साँप (दैत्य) होता है"; प्रत्येक हड़ताल मज़दूरों में इस अवबोध को दृढ़ बनाती तथा विकसित करती है कि सरकार उनकी दुश्मन है तथा मज़दूर वर्ग को जनता के अधिकारों के लिए संघर्ष करने के वास्ते अपने को तैयार करना चाहिए।

अत: हड़तालें मज़दूरों को ऐक्यबद्ध होना सिखाती हैं; उन्हें बताती हैं कि वे केवल ऐक्यबद्ध होने पर ही पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष कर सकते हैं; हड़तालें मज़दूरों को कारख़ानों के मालिकों के पूरे वर्ग के विरुद्ध, स्वेच्छाचारी, पुलिस सरकार के विरुद्ध पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की बात सोचना सिखाती है। यही कारण है कि समाजवादी लोग हड़तालों को 'युद्ध का विद्यालय', ऐसा विद्यालय कहते हैं, जिसमें मज़दूर पूरी जनता को, श्रम करने वाले तमाम लोगों को सरकारी अधिकारियों के जुए से, पूँजी के जुए से मुक्त करने के लिए अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ युद्ध करना सीखते हैं। परन्तु "युद्ध का विद्यालय" स्वयं युद्ध नहीं है। जब हड़तालें मज़दूरों के बीच व्यापक रूप से फैली होती हैं, कुछ मज़दूर (कुछ समाजवादियों समेत) यह सोचने लगते हैं कि मज़दूर वर्ग अपने को महज़ हड़तालों, हड़ताल कोषों या हड़ताल संस्थाओं तक सीमित रख सकता है, कि अकेले हड़तालों के ज़रिए मज़दूर वर्ग अपने हालात में पर्याप्त सुधार ला सकता है, यही नहीं, अपनी मुक्ति भी हासिल कर सकता है। यह देखकर कि संयुक्त मज़दूर वर्ग में, यही नहीं, छोटी हड़तालों तक में कितनी शक्ति होती है, कुछ सोचते हैं कि मज़दूर पूँजीपतियों तथा सरकार से जो कुछ भी हासिल करना चाहते हैं, उसके लिए बस इतना काफ़ी है कि मज़दूर वर्ग पूरे देश में आम हड़ताल संगठित करे। इसी तरह का विचार अन्य देशों के मज़दूरों द्वारा भी व्यक्त किया गया था, जब मज़दूर वर्ग आन्दोलन अपने आरम्भिक चरणों में था तथा मज़दूर अभी बहुत अनुभवहीन थे। पर यह ग़लत विचार है। हड़तालें तो उन उपायों में से एक हैं, जिनके ज़रिए मज़दूर वर्ग अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करता है, परन्तु वे एकमात्र उपाय नहीं हैं। यदि मज़दूर संघर्ष करने के अन्य उपायों की ओर ध्यान नहीं देते, तो वे मज़दूर वर्ग की संवृद्धि तथा सफलताओं की गति धीमी कर देंगे। यह सच है कि यदि हड़तालों को कामयाब बनाना है, तो हड़तालों के दौरान मज़दूरों के निर्वाह के लिए कोषों का होना ज़रूरी है। ऐसे मज़दूर कोष (आम तौर पर उद्योग की पृथक शाखाओं, पृथक व्यवसायों तथा वर्कशॉपों में मज़दूर कोष) तमाम देशों में रखे जाते हैं। परन्तु यहाँ रूस में यह बहुत कठिन है, क्योंकि पुलिस उनका पता लगाती है, धन ज़ब्त कर लेती है तथा मज़दूरों को गिरफ़्तार करती है। निस्सन्देह, मज़दूर उन्हें पुलिस से छुपाने में सफल रहते हैं; स्वभावतया ऐसे कोषों को संगठित करना महत्तवपूर्ण है और हम मज़दूरों को उन्हें संगठित करने के विरुद्ध परामर्श नहीं देना चाहते। परन्तु यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि मज़दूर कोष क़ानून द्वारा निषिद्ध होने पर वे चन्दा देनेवालों को बड़ी संख्या में आकृष्ट करेंगे; और जब तक ऐसे संगठनों की सदस्य संख्या कम होगी, ये कोष बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं होंगे। इसके अलावा उन देशों तक में, जहाँ मज़दूर यूनियनें खुलेआम विद्यमान हैं तथा उनके पास बहुत बड़े कोष हैं, मज़दूर वर्ग संघर्ष के साधन के रूप में अपने को हड़तालों तक सीमित नहीं कर सकता। जो कुछ आवश्यक है, वह उद्योग के मामलों में एक विघ्न (उदाहरण के लिए संकट, जो रूस में आज समीप आता जा रहा है) है, और कारख़ानों के मालिक तो जानबूझकर हड़तालें तक करायेंगे, क्योंकि कुछ समय के लिए काम का बन्द होना तथा मज़दूर कोषों का घटना उनके लिए लाभप्रद होता है। इसलिए मज़दूर किसी भी सूरत में अपने को हड़ताल सम्बन्धी कार्रवाइयों तथा हड़ताल सम्बन्धी संस्थाओं तक सीमित नहीं कर सकते। दूसरे, हड़तालें वहीं सफल हो सकती हैं, जहाँ मज़दूर पर्याप्त रूप में वर्ग-सचेत होते हैं, जहाँ वे हड़तालें करने के लिए सही अवसर चुनने में सक्षम होते हैं, जहाँ वे यह जानते हैं कि अपनी माँगें किस तरह पेश की जाती हैं, और जहाँ उनके समाजवादियों के साथ सम्बन्ध होते हैं और उनके ज़रिए पर्चे और पैम्फ़लेट हासिल कर सकते हैं। रूस में ऐसे मज़दूर अभी बहुत कम हैं, उनकी तादाद बढ़ाने के लिए हर चेष्टा की जानी चाहिए, ताकि मज़दूर वर्ग का ध्येय जन साधारण को बताया जा सके, उन्हें समाजवाद तथा मज़दूर वर्ग के संघर्ष से अवगत कराया जा सके। समाजवादियों तथा वर्ग-सचेत मज़दूरों को इस उद्देश्य के लिए समाजवादी मज़दूर वर्ग पार्टी संगठित कर यह कार्यभार संयुक्त रूप से सँभालना चाहिए। तीसरे, जैसाकि हम देख चुके हैं, हड़तालें मज़दूरों को बताती हैं कि सरकार उनकी शत्रु है, कि सरकार के विरुद्ध संघर्ष चलाते रहना चाहिए। वस्तुत: हड़तालों ने ही धीरे-धीरे तमाम देशों के मज़दूर वर्ग को मज़दूरों के अधिकारों तथा समग्र रूप में जनता के अधिकारों के लिए सरकारों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना सिखाया है। जैसाकि हम कह चुके हैं, केवल समाजवादी मज़दूर पार्टी ही मज़दूरों के बीच सरकार तथा मज़दूर वर्ग के ध्येय की सच्ची अवधारणा का प्रचार करके यह संघर्ष चला सकती है। किसी और अवसर पर हम ख़ास तौर पर इस बात की चर्चा करेंगे कि रूस में हड़तालें किस तरह संचालित होती हैं और वर्ग सचेत मज़दूरों को कैसे उनका उपयोग करना चाहिए। यहाँ हम यह इंगित कर दें कि हड़तालें जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, स्वयं युद्ध नहीं, वरन 'युद्ध का विद्यालय' हैं, कि हड़तालें संघर्ष का केवल एक साधन हैं, मज़दूर वर्ग आन्दोलन का केवल एक रूप हैं। अलग-अलग हड़तालों से मज़दूर श्रम करने वाले तमाम लोगों की मुक्ति के लिए पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की ओर बढ़ सकते हैं और उन्हें बढ़ना चाहिए, और वे वस्तुत: तमाम देशों में उस ओर बढ़ रहे हैं। जब तमाम वर्ग-सचेत मज़दूर समाजवादी हो जायेंगे, अर्थात जब वे इस मुक्ति के लिए प्रयास करेंगे, जब वे मज़दूरों के बीच समाजवाद का प्रसार कर सकने, मज़दूरों को अपने दुश्मनों के विरुद्ध संघर्ष के तमाम तरीक़े सिखा सकने के लिए पूरे देश में ऐक्यबद्ध हो जायेंगे, जब वे एक ऐसी समाजवादी पार्टी का निर्माण करेंगे, जो सरकारी उत्पीड़न से समग्र जनता की मुक्ति के लिए, पूँजी के जुए से समस्त मेहनतकश जनता की मुक्ति के लिए संघर्ष करती है, केवल तभी मज़दूर वर्ग तमाम देशों के मज़दूरों के उस महान आन्दोलन का अभिन्न अंग बन सकेगा, जो समस्त मज़दूरों को ऐक्यबद्ध करता है तथा जो लाल झण्डा ऊपर उठाता है, जिस पर ये शब्द लिखे हुए हैं : "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!"

1899 के अन्त में लिखित।
पहले पहल 1924 में प्रकाशित।
अंग्रेज़ी से अनूदित।

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय – 5

संचरण का समय और उसकी लागत

● अभिनव

पूँजीवादी उत्पादन और संचरण की प्रक्रिया में समय लगता है। यानी, औद्योगिक पूँजी के जिस सर्किट का हमने पिछले अध्यायों में अध्ययन किया और उसके जिन विभिन्न रूपों की हमने पड़ताल की, उसके घटित होने में समय ख़र्च होता है। हमने देखा था कि अपने सर्किट में औद्योगिक पूँजी तीन रूप धारण करती है (मुद्रा-पूँजी, उत्पादक-पूँजी और माल-पूँजी) और दो क्षेत्रों में अस्तित्वमान होती है (उत्पादन का क्षेत्र और संचरण का क्षेत्र)। यानी, पूँजी अपने सर्किट के दौरान उत्पादन के क्षेत्र और संचरण के क्षेत्र में मौजूद रहती है। इसके आधार पर हम औद्योगिक पूँजी के सर्किट में लगने वाले समय को दो हिस्सों में बाँट सकते हैं: *उत्पादन का समय* और *संचरण का समय।* उत्पादन का समय वह समय है जो पूँजी अपने सर्किट के दौरान उत्पादन के क्षेत्र में बिताती है, जबकि संचरण का समय वह होता है जो पूँजी अपने सर्किट के दौरान संचरण के क्षेत्र में बिताती है। संचरण के क्षेत्र में पूँजी अपने सर्किट के दौरान दो कार्रवाइयों को अंजाम देती है: श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों की ख़रीद और फिर उत्पादित माल की बिकवाली। उत्पादन के क्षेत्र में उत्पादक-पूँजी के रूप में पूँजी अपना प्रकार्य पूरा करती है, यानी बेशी-मूल्य का उत्पादन और साथ ही मूल पूँजी-मूल्य व बेशी-मूल्य से लैस उपयोग-मूल्यों यानी माल का उत्पादन।

संचरण के समय पर चर्चा करने पहले मार्क्स उत्पादन के समय पर चर्चा करते हैं। वजह यह कि इसके ज़रिये संचरण के समय पर चर्चा अधिक स्पष्ट बन जाती है।

उत्पादन का समय

उत्पादन के समय के बारे में जो सबसे पहली बात ग़ौर करने वाली है वह यह है कि उत्पादन के पूरे समय के दौरान श्रम-प्रक्रिया जारी नहीं रहती है। यानी इस दौरान श्रमशक्ति का लगातार उत्पादक उपभोग नहीं हो रहा होता है और जीवित श्रम इस दौरान निरन्तर श्रम के उपकरणों का इस्तेमाल कर कच्चे मालों को उपयोग-मूल्यों में तब्दील नहीं कर रहा होता है। *दूसरे शब्दों में, उत्पादन के समय के दौरान श्रमशक्ति निरन्तर सक्रिय नहीं होती है।* इसमें कुछ रुकावटें भी आती हैं। इन रुकावटों में से कुछ अनिवार्य होती हैं। इन अनिवार्य रुकावटों के दौरान श्रमशक्ति का उत्पादक-उपभोग तो रुका रहता है, लेकिन उत्पादन की प्रक्रिया जारी रहती है। इन रुकावटों के दौरान उत्पादित हो रहे माल पर प्रकृति की शक्तियाँ सक्रिय होती हैं या वे किसी रासायनिक प्रक्रिया से गुज़र रहे होते हैं, मसलन, कुछ मालों के उत्पादन के दौरान उनको सुखाना या उनका किण्वन (सड़ने की प्रक्रिया) से गुज़रना आवश्यक होता है। इस दौरान मज़दूर काम नहीं कर रहे होते क्योंकि इन आवश्यक प्रक्रियाओं से गुज़रने के बाद ही उत्पादन की प्रक्रिया में आगे की श्रम-प्रक्रिया चलायी जा सकती है। पूँजीपति हमेशा यह प्रयास करता है कि उत्पादन के दौरान श्रम-प्रक्रिया में आने वाली इन रुकावटों को अधिकतम सम्भव छोटा बनाया जाय और इसके लिए वह उन्नत तकनोलॉजी का इस्तेमाल करने की भरसक कोशिश करता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "लेकिन उत्पादन की प्रक्रिया में ही श्रम-प्रक्रिया में आने वाली रुकावटें और इस प्रकार कार्य-अवधि में आने वाली रुकावटें शामिल होती हैं, यानी ऐसे अन्तराल जिनमें श्रम की वस्तु मानवीय श्रम से किसी रूप में संवर्धित हुए बिना, भौतिक प्रक्रियाओं की कार्रवाई के मातहत होती है। उत्पादन-प्रक्रिया और इसलिए उत्पादन के साधनों का प्रकार्य इन मामलों में जारी रहता है, हालाँकि श्रम-प्रक्रिया और इस प्रकार श्रम के साधनों के रूप में उत्पादन के साधनों का प्रकार्य इस दौरान बाधित रहता है। मिसाल के तौर पर यह बोए जाने वाले मक्के, सेलर में किण्वित होने वाली वाइन, या श्रम की ऐसी सामग्रियों पर लागू होता है जो रासायनिक प्रकियाओं के अधीन होती हैं, जैसा कि चर्मशोधन जैसे कई उद्योगों में होता है। यहाँ उत्पादन का समय कार्य-अवधि से ज़्यादा होता है। दोनों के बीच का अन्तर कार्य-अवधि से उत्पादन के समय के ज़्यादा होने में निहित होता है। यह अन्तर हमेशा इस तथ्य पर आधारित होता है कि उत्पादक-पूँजी उत्पादन के क्षेत्र में सुषुप्त अवस्था में मौजूद होती है, जिस दौरान वह उत्पादन-प्रक्रिया में स्वयं सक्रिय नहीं होती है, या यह श्रम-प्रक्रिया में शामिल हुए बिना ही उत्पादन-प्रक्रिया में काम कर रही होती है।" (*वही,* पृ. 201)

उत्पादन की प्रक्रिया में कुछ व्यवधान अनिवार्य होते हैं, मसलन, वह समय जो उत्पादन के तत्वों की आपूर्ति-निर्माण में ख़र्च होता है। लेकिन ये ऐसे व्यवधान होते हैं, जो उत्पादन के लिए अनिवार्य होते हैं और जिनमें श्रम सक्रिय होता है। जैसे, उत्पादन के तत्वों जैसे श्रम के उपकरणों और कच्चे माल को उत्पादन के स्थान तक पहुँचाना, उनकी लोडिंग-अनलोडिंग आदि। इनमें लगने वाला श्रम उत्पादक श्रम होता है और पूँजीपति इस श्रम के शोषण के ज़रिये भी बेशी-मूल्य का विनियोजन करते हैं।

मार्क्स बताते हैं कि चाहे किसी भी वजह से उत्पादन का समय वास्तविक कार्य-अवधि (जिस दौरान श्रमशक्ति का उत्पादक-उपभोग जारी होता है) से ज़्यादा होता है, पूँजीपति हर हालत में इस अन्तर को न्यूनातिन्यून बनाना चाहता है। *वजह यह है कि नया मूल्य उसी समय पैदा होता है, जिस समय श्रमशक्ति अपने उत्पादन-उपभोग के ज़रिये जीवित श्रम दे रही होती है।* इसलिए ऐसा कोई भी समय जिसमें उत्पादन के साधन श्रमशक्ति के उत्पादक-उपभोग के ज़रिये स्वयं उत्पादक-उपभोग से नहीं गुज़र रहे होते, लेकिन उत्पादन के क्षेत्र में मौजूद होते हैं, पूँजीपति को अखरता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "उत्पादन के समय के कार्य-अवधि से अधिक होने का कारण चाहे जो भी हो... इनमें से किसी भी मामले में उत्पादन के साधन इस रूप में सक्रिय नहीं होते हैं कि वे श्रम को अपने अन्दर समाहित करें। अगर वे कोई श्रम नहीं सोखते, तो वे कोई बेशी श्रम भी नहीं सोखते। इसलिए उत्पादक-पूँजी का तब तक कोई मूल्य-संवर्धन भी नहीं हो रहा होता, जब तक कि वह अपने आपको उत्पादन के समय के उस हिस्से में पाती है, जो कार्य-अवधि से इतर होता है, चाहे ये व्यवधान मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए कितने ही अपरिहार्य क्यों न हों। स्पष्ट है कि उत्पादन का समय और कार्य-अवधि जितने अधिक बराबरी के क़रीब आते जायेंगे, दिये गये कालखण्ड में दी गयी उत्पादक-पूँजी की उत्पादकता और मूल्य-संवर्धन उतना ही ज़्यादा होगा। इसलिए पूँजीवादी उत्पादन की प्रवृत्ति यह होती है कि कार्य-अवधि से उत्पादन का समय जितना बेशी होता है उसे उतना कम किया जाय। लेकिन यद्यपि पूँजी का उत्पादन का समय उसकी कार्य-अवधि से अलग हो सकता है, लेकिन उत्पादन के समय में कार्य-अवधि हमेशा शामिल होती है, और उत्पादन का समय कार्य-अवधि से जितना अधिक होता है, वह उत्पादन-प्रक्रिया की ही पूर्वशर्त होता है। इस प्रकार, उत्पादन का समय हमेशा वह समय होता है जो पूँजी उपयोग-मूल्यों का उत्पादन करने और अपना मूल्य-संवर्धन करने में लगाती है, और इस प्रकार उत्पादक-पूँजी के प्रकार्य पूरा करने में लगाती है, हालाँकि इसमें वह समय भी होता है, जिसमें वह या तो सुषुप्त रहती है या फिर बिना मूल्य-संवर्धित हुए उत्पादन करती है।" (*वही,* पृ. 202-03)

संचरण का समय

सबसे पहले यह याद रखना आवश्यक है कि मूल्य और इसलिए बेशी-मूल्य केवल उत्पादन के समय में ही पैदा होता है और संचरण के समय में केवल बेचने-ख़रीदने की कार्रवाइयाँ होती हैं। *यानी यहाँ पूँजी केवल औपचारिक रूपान्तरणों से गुज़रती है: माल-रूप से मुद्रा-रूप और मुद्रा-रूप से माल रूप।* न तो इस काल में उपयोग-मूल्यों का उत्पादन होता है और न ही मूल्य-संवर्धन। यही वजह है कि पूँजीपति संचरण के समय को अधिक से अधिक छोटा करने का प्रयास करते हैं। स्पष्ट है, जितनी जल्दी पूँजीपति उत्पादन के तत्वों की ख़रीद को पूरा कर उत्पादन शुरू कर सकता है और जितनी जल्दी वह उत्पादित माल को बाज़ार में बेच सकता है, उसके लिए उतना ही बेहतर होता है। वह अपना पुनरुत्पादन जल्दी शुरू कर सकता है और साथ ही पूँजी के टर्नओवर की अवधि छोटी हो जाती है।

टर्नओवर का अर्थ होता है पूँजीपति द्वारा निवेशित मुद्रा-पूँजी का मूल्य-संवर्धित होकर वापस मुद्रा-रूप में उसके हाथों में आना। इसमें लगने वाले समय को टर्नओवर अवधि कहते हैं। *पूँजी* के दूसरे खण्ड के दूसरे हिस्से में मार्क्स टर्नओवर और पूँजी के मूल्य-संवर्धन की सालाना दर पर उसके प्रभावों को स्पष्ट करते हैं। अभी इतना समझ लें कि यदि पूँजीपति के टर्नओवर की अवधि छोटी है तो उसकी सालाना मुनाफ़े की दर ज़्यादा होगी और यह पूँजीपतियों के लिए काफ़ी मायने रखता है। संचरण के समय को कम-से-कम बनाकर पूँजीपति अपने टर्नओवर की गति को भी बढ़ाने का प्रयास करता है। उसके घटते टर्नओवर काल में भी उत्पादन का समय सापेक्षिक तौर पर घटता रहे और संचरण का समय सापेक्षिक तौर पर बढ़ता रहे, यह हमेशा उसकी कोशिश होती है।

मार्क्स बताते हैं कि साधारण माल उत्पादन (C – M – C) के मामले में माल उत्पादक के लिए संचरण की पहली कार्रवाई ज़्यादा अहम होती है, यानी उसके माल का बिकना (C – M)। इसके बाद, उसके पास मुद्रा होती है, जिसके बदले वह कोई भी माल ख़रीद सकता है। यानी, उसके लिए M – C एक सहज और सुलभ कार्य होता है। लेकिन पूँजीवादी उत्पादन (M – C – M') के मामले में पूँजीपति के लिए M – C, जो उसके लिए संचरण की पहली कार्रवाई है, इतनी आसान चीज़ नहीं होती है। वजह यह कि वह अपने द्वारा निवेशित की जा रही मुद्रा-पूँजी को वांछनीय मात्रा और अनुपात में उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति में तब्दील कर सके, इसके लिए उपयुक्त स्थितियाँ हमेशा मौजूद नहीं होती हैं। कई बार कोई यन्त्र या कच्चा माल बाज़ार में उपयुक्त मात्रा में मौजूद नहीं होता, तो कभी उत्पादन के लिए आवश्यक श्रमशक्ति का भी अभाव होता है।

इसके अलावा, संचरण की दूसरी कार्रवाई (C' – M') तो पूँजीपति के लिए अहम होती ही है क्योंकि इसके बिना उसकी मूल्य-संवर्धित पूँजी वापस मुद्रा-रूप में उसके पास नहीं आती। उसका उत्पादित माल स्वयं उसके लिए कोई उपयोग-मूल्य नहीं होता और उसका मुद्रा-रूप में तब्दील होना, यानी उसका बिकना पूँजीपति के लिए अनिवार्य होता है। इसके बिना, वह अपने पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को जारी नहीं रख सकता है। इस कार्रवाई को सम्पन्न करने के लिए पूँजीपति स्वयं अपने मार्केटिंग एजेण्ट का काम कर सकता है, वह इसके लिए सेल्समैन व सेल्सवुमन रख सकता है। या फिर वह अपना पूरा उत्पादित माल एक बार में व्यापारिक पूँजीपति को बेच सकता है और उत्पादित माल की बिक्री के काम को व्यापारिक पूँजीपति अंजाम दे सकता है। इसके बदले में औद्योगिक पूँजीपति व्यापारिक पूँजीपति को मज़दूरों के शोषण के ज़रिये निचोड़े गये बेशी मूल्य का एक हिस्सा देता है। आगे हम देखेंगे कि इसके बावजूद औद्योगिक पूँजीपति फ़ायदे में ही रहता है क्योंकि अगर वह माल की बिकवाली के काम को स्वयं अंजाम देता तो उसे भी इसके लिए दुकान खोलनी पड़ती, मज़दूर रखने पड़ते और ऊपर से माल की बिकवाली पूरी होने पर ही उसके पास उसकी संवर्धित पूँजी पूर्ण रूप में मुद्रा-रूप में आती और उसके टर्नओवर का समय बढ़ जाता। बहरहाल, पूँजीपति या तो बिक्री एजेण्ट का काम स्वयं करेगा, या उसके लिए मज़दूर रखेगा या फिर वह व्यापारिक पूँजीपति को अपना समूचा उत्पादित माल बेचेगा जो उसे अन्तिम उपभोक्ता को बेचने का काम करेगा। *जो भी हो, इस काम में कुछ श्रम भी ख़र्च होता है और इसकी कुछ अन्य लागतें होती हैं।* यह चर्चा मार्क्स को उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के विषय पर लाती है। इस बारे में बुनियादी बातें मार्क्स पहले ही *पूँजी* के पहले खण्ड में कर चुके हैं और यहाँ पर यह चर्चा केवल संचरण के श्रम के विशिष्ट सन्दर्भ में दुहरायी गयी है।

(पेज 14 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 13 से आगे)

संचरण (ख़रीद व बिक्री की कार्रवाई) में लगने वाला श्रम: उत्पादक या अनुत्पादक?

सबसे पहले उत्पादक व अनुत्पादक श्रम के बारे में कुछ बुनियादी बातों को याद कर लेते हैं। *पूँजी के नज़रिये से उत्पादक श्रम वह है जो बेशी मूल्य पैदा करे।* ज़ाहिरा तौर पर, इसके लिए उसे उपयोग-मूल्य, यानी कोई उपयोगी वस्तु या सेवा भी पैदा करनी होगी क्योंकि उपयोग-मूल्य ही मूल्य और बेशी मूल्य का भौतिक आधार होता है। *कोई भी श्रम जो उपयोग मूल्य पैदा करता है, वह सामाजिक दृष्टि से उत्पादक श्रम है।* लेकिन हर उपयोग-मूल्य माल नहीं होता है। वह प्रत्यक्ष व्यक्तिगत उपभोग के लिए पैदा की गयी वस्तु या सामग्री भी हो सकती है। वह पूँजी की दृष्टि से उत्पादक श्रम की श्रेणी में नहीं आयेगा। जो श्रम पूँजीपति वर्ग के लिए बेशी मूल्य समेत मूल्य पैदा करे, वह पूँजी की दृष्टि से उत्पादक श्रम की श्रेणी में आता है।

इसके अलावा, ऐसा श्रम भी हो सकता है जो सामाजिक दृष्टि से और आम तौर पर पूँजी की दृष्टि से उत्पादक न हो, लेकिन किसी विशिष्ट पूँजीपति के लिए वह उत्पादक हो सकता है क्योंकि वह उसे उत्पादक क्षेत्र में काम करने वाले उद्यमी पूँजीपति द्वारा निचोड़े गये बेशी मूल्य का एक हिस्सा विनियोजित करने में सक्षम बनाता है। व्यापारिक पूँजीपति द्वारा रखे गये मज़दूर का श्रम जो शुद्ध रूप से ख़रीद और बिक्री के कार्य में लगा होता है, इस तीसरी श्रेणी में आता है। वह न तो कोई उपयोग-मूल्य पैदा करता है और न ही वह कोई मूल्य पैदा करता है। वह पूँजी की दृष्टि से और सामाजिक तौर पर अनुत्पादक श्रम है।

अत: शुद्ध रूप से संचरण की गतिविधियों में लगने वाला श्रम अनुत्पादक श्रम होता है। वह कोई उपयोग-मूल्य व मूल्य पैदा नहीं करता है और इसलिए बेशी-मूल्य भी पैदा नहीं करता है। इसमें लगी श्रमशक्ति के लिए भुगतान पूँजीपति द्वारा उस मूल्य से किया जाता है जो उत्पादक श्रम द्वारा पैदा होता है। ऐसा हो सकता है कि संचरण में लगे श्रमिक को यह भुगतान आंशिक रूप से व्यापारी और आंशिक तौर पर ग्राहक द्वारा किया जा सकता है। उस सूरत में भी ग्राहक द्वारा किया जा रहा भुगतान या तो उसके वेतन/मज़दूरी से आता है, या फिर अगर ग्राहक पूँजीपति या भूस्वामी हुआ तो बेशी मूल्य के एक हिस्से से आता है। जो भी हो, संचरण में लगे मज़दूरों की मज़दूरी का भुगतान उत्पादन के क्षेत्र में पैदा हुए मूल्य के किसी न किसी रूप से ही किया जाता है, चाहे वह मुनाफ़ा हो या स्वयं किसी ग्राहक की मज़दूरी।

लेकिन क्या इसका यह अर्थ है कि संचरण में लगे मज़दूर का शोषण नहीं होता है? **नहीं। व्यापारिक पूँजीपति द्वारा रखे गये उजरती मज़दूर का शोषण होता है।** कैसे? यह मज़दूर भी अपनी श्रमशक्ति ही व्यापारिक पूँजीपति को बेचता है। श्रमशक्ति का मूल्य सामाजिक तौर पर निर्धारित होता है। अगर श्रमशक्ति का सामाजिक मूल्य 4 घण्टे के सामाजिक श्रम की नुमाइन्दगी करता है और यह मज़दूर 8 या 10 घण्टे के बराबर सामाजिक श्रम देता है, तो इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि उसका श्रम संचरण के क्षेत्र लगा अनुत्पादक श्रम है और कोई मूल्य व बेशी-मूल्य नहीं पैदा करता है। शोषण इस तथ्य में ही निहित है कि वह अपने श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक सामाजिक श्रम की मात्रा से अधिक सामाजिक श्रम पूँजीपति को दे रहा है। मार्क्स लिखते हैं:

> "मामले को सरल बनाने के लिए मान लें कि ख़रीद और बिक्री का काम करने वाला एजेण्ट एक ऐसा आदमी है जो अपना श्रम बेचता है। वह और C – M और M – C के प्रकार्यों को सम्पन्न करने में अपनी श्रमशक्ति और अपने श्रमकाल को ख़र्च करता है। और इस प्रकार वह इसके बूते उसी प्रकार जीता है जैसे कि कोई और कताई करके या दवा की गोलियाँ बनाकर जीता है। वह एक आवश्यक कार्य कर रहा है, क्योंकि स्वयं पुनरुत्पादन प्रक्रिया में ही अनुत्पादक प्रकार्य भी शामिल होते हैं। वह भी किसी भी दूसरे आदमी की तरह काम करता है, लेकिन उसका श्रम न तो कोई मूल्य पैदा करता है और न ही कोई उत्पाद। वह स्वयं उत्पादन के अनिवार्य अनुत्पादक ख़र्चों में शामिल है। उसकी उपयोगिता एक अनुत्पादक प्रकार्य को उत्पादक प्रकार्य में, या अनुत्पादक श्रम को उत्पादक श्रम में बदल डालने में नहीं है। अगर ऐसा रूपान्तरण महज़ इन प्रकार्यों को एक हाथ से दूसरे हाथ में रूपान्तरित कर देने मात्र से सम्भव होता तो यह एक चमत्कार होता। उल्टे वह इसलिए उपयोगी है क्योंकि अब इन अनुत्पादक प्रकार्यों में समाज की श्रमशक्ति और श्रमकाल का एक अपेक्षाकृत छोटा हिस्सा लगा हुआ है। *इसके अलावा, मान लें कि वह एक साधारण उजरती मज़दूर है, चाहे उसे कुछ ज़्यादा मज़दूरी ही क्यों न मिलती हो। एक उजरती मज़दूर के तौर पर उसका भुगतान चाहे जो भी हो, वह दिन के एक हिस्से में बिना किसी भुगतान के काम करता है। हो सकता है वह प्रतिदिन आठ घण्टे के श्रम के मूल्य-उत्पाद को भुगतान के रूप में प्राप्त कर रहा हो, जबकि वह कुल दस घण्टे काम कर रहा हो।* वह जो दो घण्टे का बेशी श्रम कर रहा है, वह बाक़ी आठ घण्टे के आवश्यक श्रम के ही समान कोई मूल्य नहीं पैदा कर रहा है, हालाँकि इस आवश्यक श्रम के ही बूते सामाजिक उत्पादक का एक हिस्सा उसे स्थानान्तरित होता है।" (*वही,* पृ. 209-10, *ज़ोर हमारा*)

असल बात यह है कि संचरण के क्षेत्र में काम करने वाला मज़दूर कोई मूल्य न पैदा करते हुए भी शोषित होता है क्योंकि वह अपनी श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक सामाजिक श्रम से ज़्यादा सामाजिक श्रम देता है। दूसरी बात, पूँजीपति वर्ग के लिए आम तौर पर यह अनुत्पादक श्रम होने के बावजूद उपयोगी है क्योंकि यह पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है और साथ ही यह पूँजीवादी उत्पादन के अनिवार्य अनुत्पादक ख़र्च को सामाजिक तौर पर कम कर देता है। इस रूप में यह उद्यमी पूँजीपति के मुनाफ़े की दर को बढ़ाता है क्योंकि अगर हर उद्यमी पूँजीपति स्वयं संचरण के क्षेत्र के सारे कामों को अपने मातहत रखे तो संचरण की लागत कहीं ज़्यादा होगी, टर्नओवर काल कहीं ज़्यादा होगा, मुनाफ़े की सालाना दर कम होगी और पुनरुत्पादन की प्रक्रिया रुक-रुककर चलेगी। व्यापारिक पूँजीपति C' – M' के कार्य को सम्पन्न करने का काम करता है और यह वह कई उद्यमी पूँजीपतियों के लिए करता है। नतीजतन, संचरण के काम को एक जगह पर बड़े पैमाने पर संकेन्द्रित किया जाता है, बड़े स्तर पर काम को अंजाम देने से ख़र्च कम हो जाते हैं। बदले में व्यापारिक पूँजीपति औद्योगिक पूँजीपति से निचोड़े गये बेशी मूल्य का जो हिस्सा लेता है, वह उस ख़र्च से कहीं कम होता है जो औद्योगिक पूँजीपति को तब उठाना पड़ता अगर वह स्वयं संचरण का यानी व्यापारिक पूँजीपति की भी भूमिका निभाता।

मार्क्स बताते हैं कि C' – M' के काम को पूरा करने की एक समय-सीमा भी होती है। ग़ौरतलब है कि उत्पादित मालों का बिकना एक निश्चित समय में ज़रूरी होता है क्योंकि उसके बाद वे अपने उपयोग-मूल्य और मूल्य दोनों को ही खोना शुरू कर देते हैं। इससे पहले कि माल प्रकृति की शक्तियों के असर के कारण ख़राब होने लगें और अपना उपयोग-मूल्य व मूल्य खोने लगें, उनका बिकना अनिवार्य होता है। साथ ही, अगर माल ज़्यादा टिकाऊ प्रकृति का हो, तो भी उसका जल्दी बिकना अनिवार्य होता है क्योंकि श्रम की उत्पादकता के बढ़ने के साथ यही माल पहले से कम क़ीमत में बाज़ार में उपलब्ध हो जाता है और पुराने माल को भी अब इस नयी, कम क़ीमत पर बिकना होता है। इसलिए दुकान की शेल्फ़ों में पड़े हुए अनबिके मालों का हर बीतता दिन पूँजीपति पर भारी होता है। यही कारण है कि पूँजीपति आम तौर पर बेहद क्षणभंगुर प्रकृति के मालों के उत्पादन का काम हाथ में नहीं लेते और उन्हें पहले ही माल की आपूर्ति का ऑर्डर मिल गया हो, तो ही वे ऐसे मालों का उत्पादन शुरू करते हैं।

इसके बाद, मार्क्स संचरण की लागतों के प्रश्न पर आते हैं। मार्क्स संचरण की लागतों को तीन श्रेणियों में बाँटते हैं : *शुद्ध रूप से संचरण की कार्रवाइयों की लागत, भण्डारण की लागत* और *परिवहन की लागत।* इसमें से पूर्ण रूप से अनुत्पादक ख़र्च पहला वाला है। बाक़ी दोनों विशिष्ट और भिन्न रूप में उत्पादक ख़र्च हैं, और उनके लगने वाला श्रम भी इन अर्थों में उत्पादक है और पूँजीपति इन लागतों को क़ीमत में जोड़ता है और साथ ही इसमें लगने वाले श्रम का शोषण कर बेशी मूल्य भी निचोड़ता है।

संचरण की लागत

सबसे पहले मार्क्स शुद्ध संचरण की लागत की बात करते हैं क्योंकि ये पूँजीवादी उत्पादन की अनिवार्य अनुत्पादक लागतें होती हैं।

क) शुद्ध संचरण की लागतें : इसमें पूर्ण रूप से मालों की ख़रीद और बिकवाली की कार्रवाइयों में होने वाले ख़र्च शामिल हैं। मिसाल के तौर पर, पूँजीपति द्वारा बहीखाते रखने, बिक्री व ख़रीद के एजेण्टों को काम पर रखने समेत बिक्री व ख़रीद की प्रक्रिया से जुड़े सभी ख़र्च शामिल हैं। स्वर्ण मुद्रा के दौर में, बेशी उत्पाद के हेतु अतिरिक्त स्वर्ण मुद्रा के लिए सोने के उत्पादन पर लगने वाला अतिरिक्त श्रम भी सामाजिक तौर पर श्रम के अनुत्पादक ख़र्च की श्रेणी में आता था क्योंकि सामाजिक श्रम आपूर्ति की एक निश्चित मात्रा इसमें भी ख़र्च होती थी, और सोने की और कोई उपयोगिता नहीं थी, सिवाय इसके लिए वह संचरण के माध्यम का काम करता था। आज के दौर में यह बात लागू नहीं होती क्योंकि न तो सोने की मुद्रा प्रचलन में है और न ही शुद्ध रूप से काग़ज़ी मुद्रा स्वर्ण-समर्थित रह गयी है। शुद्ध फियेट मुद्रा को छापने का ख़र्च बेहद मामूली होता है और सरकार उसे भी जनता से करों के ज़रिये वसूल लेती है। बहरहाल, खाता-बही रखने व पूर्ण रूप से बिक्री व ख़रीद में लगे श्रम व सामग्रियों पर किया जाने वाला ख़र्च पूँजीपति के लिए पूर्ण रूप से अनुत्पादक ख़र्च होता है। इसे वह क़ीमतों में नहीं जोड़ सकता और पूँजीपतियों के बीच की प्रतिस्पर्द्धा इस बात को सुनिश्चित करती है। इसमें लगने वाला श्रम कोई मूल्य व बेशी-मूल्य नहीं पैदा करता है। नतीजतन, इस पर होने वाला ख़र्च पूँजीपति द्वारा किये जाने वाले पूँजी ख़र्च में जुड़ता है और इस प्रकार उसके लाभप्रदता को कुछ कम करता है। लेकिन यह पूँजीपति के लिए आवश्यक ख़र्च है। खाता-बही रखना पूँजीपति के लिए उसके द्वारा उत्पादन में जारी मूल्यों के प्रवाह और यहाँ तक कि क़ीमतों को निर्धारित करने के लिए आवश्यक होता है। साथ ही, बिक्री व ख़रीद में होने वाला ख़र्च उत्पादन के साधनों की आपूर्ति को निर्मित करने और साथ ही उत्पादित माल की बिकवाली के लिए अनिवार्य होता है।

ख) भण्डारण की लागतें : इसे आपूर्ति-निर्माण की लागतें भी कहा जाता है। माल-पूँजी का भण्डारण (जिसमें एक ख़रीदार के तौर पर पूँजीपति द्वारा किया जाने वाला आपूर्ति-निर्माण और बिकवाली के लिए उत्पादित माल का भण्डारण दोनों ही शामिल हैं) महज़ संचरण के लिए आवश्यक नहीं है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि माल के उपयोग-मूल्य व मूल्य में होने वाले किसी भी ह्रास को रोका जा सके या न्यूनातिन्यून बनाया जा सके। भण्डारण में लगने वाला श्रम उपयोग-मूल्य में कुछ भी नहीं जोड़ता, वह कोई नया उपयोग-मूल्य नहीं पैदा करता है। नतीजतन, सामाजिक तौर पर यह श्रम अनुत्पादक है। लेकिन पूँजीपतियों के लिए यह श्रम उत्पादक श्रम है क्योंकि यह मूल्य व बेशी-मूल्य में ह्रास को रोकता है और अगर वह नहीं होता तो माल के मूल्य व बेशी-मूल्य में ह्रास होता। इसलिए नकारात्मक तौर पर यह मूल्य "पैदा" कर रहा है, इन अर्थों में क्योंकि वह मूल्य की एक मात्रा की हानि होने से रोकता है। इस प्रकार भण्डारण में लगने वाला श्रम सामाजिक तौर पर अनुत्पादक है लेकिन पूँजी के लिए उत्पादक है। औसत तौर पर भण्डारण में अनिवार्यत: होने वाले ख़र्च को पूँजीपति अपनी क़ीमतों में शामिल करता है, इसमें लगने वाले श्रम का शोषण कर उससे भी बेशी मूल्य विनियोजित करता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "संचरण की वे लागतें जो महज़ मूल्य के रूप में होने वाले परिवर्तन से पैदा होती हैं, यानी आदर्श रूप में संचरण से पैदा होती हैं, वे मालों के मूल्य में शामिल नहीं होती हैं। जहाँ तक पूँजीपति का प्रश्न है, उन ख़र्च पूँजी के हिस्से उत्पादक रूप से ख़र्च होने वाली पूँजी में होने कटौती होते हैं। अब हम जिन संचरण की लागतों पर विचार करेंगे उनकी प्रकृति अलग है। वे उत्पादन की उन प्रक्रियाओं से ही पैदा हो सकती हैं, जो संचरण के क्षेत्र में जारी रहती हैं और इसलिए जिनका उत्पादक चरित्र महज़ संचरण के रूप से छिपा रहता है। ऐसा भी हो सकता है कि सामाजिक दृष्टि से वे और कुछ नहीं बल्कि केवल लागतें, यानी श्रम का अनुत्पादक ख़र्च हों, चाहे जीवित रूप में या वस्तुकृत रूप में, लेकिन ठीक इसी वजह से उनका वैयक्तिक पूँजीपति के लिए एक मूल्य पैदा करने वाला प्रभाव होता है, और वे मालों की बिक्री क़ीमत में जुड़ती हैं। यह इस साधारण से तथ्य से प्रदर्शित होता है कि ये लागतें एक ही उत्पादन के क्षेत्र में लगी विभिन्न वैयक्तिक पूँजियों के लिए अलग-अलग हो सकती हैं। माल के क़ीमत में उन्हें जोड़ने की कार्रवाई का अर्थ है कि वे जिस हद तक वैयक्तिक पूँजीपति के ऊपर पड़ती हैं, उसी अनुपात में उनका वितरण हो जाता है। लेकिन हर वह श्रम जो मूल्य जोड़ता है, वह बेशी-मूल्य भी जोड़ सकता है और पूँजीवाद के आधार पर जोड़ता ही है, क्योंकि जो मूल्य वह निर्मित करता है वह स्वयं उस श्रम की सीमा पर निर्भर करता है, जबकि जो बेशी-मूल्य वह निर्मित करता है वह उस भुगतान की सीमा पर निर्भर करता है जो पूँजीपति इसके लिए उसे करता है। इस प्रकार, जहाँ वे लागतें जो मालों को बिना उनके उपयोग-मूल्य में कोई इज़ाफ़ा किये महँगा बना देती हैं, सामाजिक रूप से उत्पादन के अनिवार्य अनुत्पादक ख़र्च

(पेज 15 पर जारी)

समर तो शेष है

नये संकल्प लें फिर से
नये नारे गढ़ें फिर से
उठो संग्रामियो ! जागो !
नयी शुरुआत करने का समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख़ गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है !

चलो, अब इक नये अभियान के पदचाप गूँजें
मौत की सुनसान सूनी वादियों में फिर।
कि नूतन सर्जना के राग भर दें
शोकगीतों से भरी इन घाटियों में फिर।

दरकती हिमशिलाएँ, सर्दियों के बाद हरदम ही
बसन्त आता रहा है, यह प्रकृति की गति रही है।
अँधेरे गर्भ में ही रौशनी पलती रही है, पराजय झेलने पर भी
शिविर में न्याय के हरदम मशालें जीत की जलती रही हैं।

पराजय आज का सच है
समर तो शेष है फिर भी
उठो ओ सर्जको !
नवजागरण के सूत्र रचने का समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख़ गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है।

ग़ुलामों की नयी फ़ौजें सजेंगी, हिल उठेगी
रोम की ताक़त और आतंक पिघलेगा।
महल वर्साय का फिर धूल में मिल जायेगा,
गतिरोध टूटेगा, महाविद्रोह उट्ठेगा।

कम्यूनार्ड पेरिस के उठेंगे हर नगर में,
अव्रोरा जलपोत से फिर तोप गरजेंगे।
लातिनी अमेरिका, एशिया में, अफ़्रीका में
क्रान्तियों के रक्तवर्णी मेघ बरसेंगे।

न उनकी जीत अन्तिम है
न अपनी हार अन्तिम है
उठो ओ नौजवानो !
इन्क़लाबों के नये संस्करण रचने का
समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख़ गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है।

हर शहर से एक शिकागो उठ खड़ा हो
सोच कर आगे बढ़ें हम फिर।
मई दिवस बन जाये हर दिन साल का
यह सोच कर तैयारियाँ करने लगें हम फिर।

सुनो इतिहास कहता है, पराजय झेलकर ही
क्रान्तियाँ परवान चढ़ती हैं, नया इतिहास बनता है।
अँधेरा आज गहरा है, श्रमिक जन मुक्त होंगे
एक दिन निश्चित, समय का ज्ञान कहता है।

सजेंगे फिर नये लश्कर
मचेगा रण महाभीषण
उठो ओ शिल्पियो!
नवयुद्ध के उपकरण गढ़ने का
समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख़ गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है।

● शशि प्रकाश

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 14 से आगे)

हैं, वहीं वैयक्ति पूँजीपति के लिए वे समृद्धि का स्रोत हो सकती हैं।" (*वही*, पृ. 214)

इस प्रकार भण्डारण में लगने वाला श्रम पूँजीपति के नज़रिये से उत्पादक होता है। वह इसमें लगने वाले श्रम के शोषण के ज़रिये बेशी-मूल्य भी विनियोजित करता है। लेकिन सामाजिक दृष्टि से यह श्रम अनुत्पादक होता है क्योंकि यह उपयोग-मूल्य के मामले में कोई भी इज़ाफ़ा नहीं करता है। लेकिन यह मूल्य का ह्रास रोकता है। अगर यह श्रम न ख़र्च हो, तो पूँजीपति के माल के उपयोग-मूल्य व मूल्य दोनों का ह्रास होगा। इस रूप में, नकारात्मक तौर पर देखें तो यह पूँजीपति के लिए मूल्य "पैदा" करता है। और ठीक इसीलिए यह वैयक्तिक पूँजीपति के लिए उत्पादक श्रम की श्रेणी में आता है।

ग) परिवहन की लागतें: मार्क्स बताते हैं कि परिवहन की लागतें व उसमें लगने वाला श्रम कई प्रकार का होता है। एक तरफ़ पूँजीपति को उत्पादन के साधनों और कभी-कभी श्रमशक्ति को भी किसी अन्य स्थान से उत्पादन के स्थान पर लाना पड़ता है। यह श्रम उत्पादन की प्रक्रिया की शुरुआत के लिए ही अनिवार्य होता है। वहीं पूँजीपति जब तक उत्पादित माल को उत्पादन के स्थान से बिक्री के स्थान तक नहीं पहुँचाता, जहाँ उसका माल अन्तिम उपभोक्ता द्वारा ख़रीदे जाने और उपभोग के लिए तैयार हो, तब तक उत्पादन की प्रक्रिया जारी ही रहती है क्योंकि मालों का मूल्य के तौर पर वास्तवीकरण बिकने के साथ और उपयोग-मूल्य के तौर पर वास्तवीकरण उपभोग के साथ ही होता है। इसलिए उत्पादित माल को उत्पादन के स्थान से अन्तिम बिक्री के स्थान तक पहुँचाने में लगने वाला परिवहन का श्रम (और उसकी लागतें) पूँजीवादी उत्पादन के लिए अनिवार्य होती हैं। इसलिए परिवहन की गतिविधि तकनीकी तौर पर उत्पादन के क्षेत्र से बाहर होने के बावजूद संचरण के क्षेत्र में उत्पादन की गतिविधि के जारी रहने का प्रतिनिधित्व करती हैं और वे उत्पादक लागत व श्रम की श्रेणी में आती हैं। ये गतिविधि अपने आप में संचरण की कार्रवाई नहीं बल्कि उत्पादन की ही कार्रवाई के लिए अनिवार्य होती हैं।

मार्क्स बताते हैं कि जैसे-जैसे पूँजीवाद का विकास होता है, वैसे-वैसे परिवहन स्वयं एक स्वतन्त्र और विशालकाय पूँजीवादी उद्योग में तब्दील होता जाता है। दूर-दराज़ के बाज़ारों तक उत्पादित मालों को पहुँचाना और दूर-दराज़ के बाज़ारों से उत्पादन के साधनों को उत्पादन के स्थान तक पहुँचाना और कई बार श्रमशक्ति को उत्पादन के स्थान तक पहुँचाना पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था के विकास के साथ अनिवार्य और अपरिहार्य होता जाता है। इसके साथ पूँजीवादी देशों में परिवहन का एक विराटकाय ताना-बाना सघन और व्यापक तौर पर विकसित होता जाता है।

जैसा कि हमने पहले भी देखा, परिवहन किसी भी अन्य पूँजीवादी उद्योग के समान माल-उत्पादन करता है, हालाँकि इसके द्वारा उत्पादित माल कोई उपयोगी वस्तु नहीं बल्कि एक उपयोगी प्रभाव या सेवा होता है और उसका उत्पादन और उपभोग एक साथ ही सम्पन्न होता है। इस माल के उत्पादन की प्रक्रिया ही उसके उपभोग की प्रक्रिया भी होती है। यह उपयोगी प्रभाव होता है मालों व व्यक्तियों का स्थान-परिवर्तन। श्रम की उत्पादकता के विकास के साथ इस उद्योग का माल भी सस्ता होता जाता है और पूँजीपतियों के लिए अपने मालों की ढुलाई की प्रति-इकाई लागत घटती जाती है। शिपिंग, वाणिज्यिक सड़क परिवहन, रेलवे द्वारा माल ढुलाई की व्यवस्था अधिक से अधिक दैत्याकार रूप धारण करती जाती है और साथ ही पास के बाज़ारों में आपूर्ति के लिए परिवहन के अन्य साधन भी पूँजीवादी आधार पर विकसित होते जाते हैं।

चूँकि यह एक उत्पादक गतिविधि है इसलिए इसमें लगने वाला श्रम भी उत्पादक श्रम होता है। यह मूल्य पैदा करता है और पूँजीवादी उत्पादन के आधार पर यह परिवहन के क्षेत्र के पूँजीपतियों के लिए बेशी-मूल्य भी पैदा करता है। चूँकि यह मूल्य पैदा करने वाली उत्पादक गतिविधि है इसलिए इसकी लागत माल की क़ीमत में जुड़ती है। इसलिए परिवहन की गतिविधि औपचारिक तौर पर संचरण के क्षेत्र में चलने के बावजूद उत्पादन का ही जारी रहना है और एक उत्पादक गतिविधि है। मार्क्स लिखते हैं:

"यहाँ पर पैकिंग, श्रेणीकरण, आदि जैसी संचरण की लागतों के तमाम विवरणों के विस्तार में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आम नियम यह है कि ऐसी सभी संचरण लागतें जो केवल माल के रूप में परिवर्तन के आधार पर पैदा होती हैं वे कोई मूल्य नहीं जोड़ती हैं। वे केवल मूल्य का वास्तवीकरण करने या उसे एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित करने की लागतें हैं। इन लागतों में ख़र्च होने वाली पूँजी (और साथ ही श्रम जिसे यह पूँजी निर्देशित करती है) पूँजीवादी उत्पादन के अनिवार्य अनुत्पादक ख़र्च में शामिल होती है। इन लागतों को भरपाई बेशी उत्पाद, और सम्पूर्ण तौर पर पूँजीपति वर्ग के नज़रिये से बेशी-मूल्य या बेशी-उत्पाद में से कटौती करके होती है, ठीक उसी प्रकार जैसे जिस समय में मज़दूर अपने उपभोग के साधन ख़रीदता है, वे उसके लिए खोये हुए समय के समान होता है। *लेकिन परिवहन की लागतें कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और इसलिए यहाँ उन पर संक्षेप में विचार करना ज़रूरी है।*" (*वही*, पृ. 225-26, *ज़ोर हमारा*)

परिवहन की लागतों के उत्पादक चरित्र को स्पष्ट करते हुए आगे मार्क्स लिखते हैं:

"परिवहन द्वारा उत्पादों की मात्रा में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती है। परिवहन के कारण उनके प्राकृतिक गुणों में जो परिवर्तन आ सकता है, अपवादों को छोड़कर, वह कोई इरादतन पैदा किया गया उपयोगी प्रभाव नहीं होता है, बल्कि एक ऐसी बुराई है जिससे बचा नहीं जा सकता। लेकिन चीज़ों का उपयोग मूल्य केवल उनके उपभोग में ही वास्तवीकृत होता है, और उनके उपभोग के लिए उनके स्थान में परिवर्तन आवश्यक हो सकता है, और इसलिए परिवहन उद्योग की अतिरिक्त उत्पाद प्रक्रिया भी अनिवार्य हो सकती है। इस प्रकार, इस उद्योग में निवेशित उत्पादक पूँजी ले जाये या ले आये जा रहे उत्पादों में मूल्य जोड़ती है, आंशिक तौर पर परिवहन के साधनों के मूल्य के स्थानान्तरण के ज़रिये और आंशिक तौर पर परिवहन के कार्य द्वारा जोड़े गये मूल्य के ज़रिये। परिवहन के कार्य द्वारा जो मूल्य जोड़ा जाता है, वह, जैसा कि समस्त पूँजीवादी उत्पादन के साथ होता है, मज़दूरी और बेशी-मूल्य में विभाजित होता है।" (*वही*, पृ. 226-27)

दूसरे शब्दों में, परिवहन उद्योग में लगा श्रम उत्पादक श्रम होता है जो उपयोग-मूल्य और मूल्य दोनों पैदा करता है और चूँकि यह उद्योग भी पूँजीवादी आधार पर संगठित होता है, इसलिए यह श्रम इस क्षेत्र के पूँजीपति के लिए बेशी-मूल्य भी पैदा करता है। इसके द्वारा पैदा मूल्य उत्पाद के मूल्य में जुड़ता है। यानी, परिवहन की लागत माल की क़ीमत में शामिल होती है।

●

इस प्रकार, औपचारिक तौर पर हम संचरण की तीन प्रकार लागतों की बात कर सकते हैं। लेकिन इसमें केवल पहली श्रेणी यानी शुद्ध रूप से संचरण की कार्रवाई की लागतें, यानी बेचने-ख़रीदने की प्रक्रिया की लागतें और उसमें लगने वाला श्रम ही अनुत्पादक लागतें व अनुत्पादक श्रम है। बाक़ी दोनों क़िस्म की लागतें, यानी भण्डारण की लागतें और परिवहन की लागतें माल की क़ीमत में शामिल होती हैं और इसमें लगने वाला श्रम पूँजीपति के लिए उत्पादक होता है। उसके शोषण के ज़रिये भी पूँजीपति बेशी-मूल्य विनियोजित करता है। इसमें से भण्डारण की लागतें पूँजीपति की दृष्टि से उत्पादक लागतें हैं, लेकिन सामाजिक दृष्टि से वे अनुत्पादक लागतें हैं क्योंकि वे उपयोग-मूल्य में कुछ भी नहीं जोड़तीं। लेकिन परिवहन की लागतें न सिर्फ़ वैयक्तिक पूँजीपति के लिए उत्पादक लागतें हैं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी उत्पादक लागतें हैं क्योंकि जब तक उत्पादित माल उस स्थान तक नहीं पहुँच जाता जहाँ वह अपने उपभोग के लिए तैयार हो तब तक उत्पादन की प्रक्रिया जारी मानी जाती है, और साथ ही, जब तक उत्पादन के तत्व उत्पादन के स्थान पर नहीं पहुँच जाते तब तक उत्पादन की प्रक्रिया शुरू ही नहीं हो सकती और इसलिए उनका उत्पादन के स्थान पर पहुँचाया जाना उत्पादन की कार्रवाई के लिए अनिवार्य होता है। इसका संचरण से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं होता है, हालाँकि औपचारिक तौर पर ये गतिविधियाँ आयोजित संचरण के क्षेत्र में होती हैं।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

वेनेज़ुएला पर अमेरिकी साम्राज्यवादी हमला

ट्रम्प के ज़रिये उजागर हो रहा है साम्राज्यवाद का बर्बर मानवद्रोही चेहरा

● आनन्द

नये साल की शुरुआत में ही अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने दुनिया को अपने ख़तरनाक मंसूबों की झलक दिखला दी जब 3 जनवरी को अमेरिका ने वेनेज़ुएला की राजधानी काराकास सहित उसके कई शहरों पर ताबड़तोड़ बमबारी करके वहाँ के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो और उनकी पत्नी को उनके आवास से अगवा कर लिया। मादुरो और उनकी पत्नी पर नशीले पदार्थों की तस्करी के फ़र्ज़ी आरोप में न्यूयॉर्क में मुक़दमा चलाया जा रहा है। ऐसा नहीं है कि अमेरिका ने पहली बार किसी दूसरे देश की सम्प्रभुता की धज्जियाँ उड़ायी हैं; अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा दूसरे देशों पर बर्बर हमले करने, तख़्तापलट करवाने, दूसरे देशों के राष्ट्राध्यक्षों की हत्याएँ करवाने और उनको अगवा कराने का लम्बा इतिहास रहा है। वेनेज़ुएला पर किये गये मौजूदा हमले से पहले अमेरिका अकेले लातिन अमेरिका के देशों में 56 बार सैन्य हस्तक्षेप कर चुका है। परन्तु अब तक अमेरिका किसी दूसरे देश पर हमला करने के लिए किसी 'महान ध्येय' जैसे "लोकतन्त्र की स्थापना" या "आतंकवाद के ख़िलाफ़ जंग" का स्वांग रचता था और इस प्रकार अपने बर्बर कृत्य को जायज़ ठहराने की कोशिश करता था। लेकिन ट्रम्प काल में अमेरिकी साम्राज्यवाद दुनिया भर में अपनी दादागिरी दिखाने के लिए किसी प्रकार का ढोंग करने की भी कोई ज़रूरत नहीं समझ रहा है। ट्रम्प ख़ुले आम अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों को धता बताते हुए आये दिन किसी न किसी देश को धमकी दे रहा है। कभी उसके निशाने पर ग्रीनलैण्ड रहता है तो कभी क्यूबा, मेक्सिको या कोलम्बिया। वैसे देखा जाये तो संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्तरराष्ट्रीय क़ानून पहले भी अपनी प्रासंगिकता लगातार खोते जा रहे थे, परन्तु ट्रम्प ने अपने करतूतों से इनको बिल्कुल ही बेमतलब बना दिया है।

वेनेज़ुएला पर अमेरिकी हमले की जानकारी दुनिया को देते हुए ट्रम्प ने निहायत ही बेशर्मी से कहा कि मादुरो को सत्ता से हटाने के बाद अब अमेरिका वेनेज़ुएला के शासन-प्रशासन की बागडोर अनिश्चित काल के लिए अपने हाथ में लेगा और वहाँ के तेल संसाधनों पर अपना नियन्त्रण क़ायम करेगा और अमेरिकी तेल कम्पनियाँ वेनेज़ुएला का तेल दुनियाभर में बेचेंगी। इस प्रकार ट्रम्प काल में साम्राज्यवाद के बर्बर मानवद्रोही चेहरे पर कोई पर्दा नहीं रह गया है और उसका असली रूप दुनिया के सामने है। मज़े की बात तो यह है कि साम्राज्यवाद का यह सनकी सरगना ख़ुद को "शान्ति का मसीहा" बताता है और आये दिन दुनिया में शान्ति क़ायम करने के लिए ख़ुद की पीठ थपथपाता रहता है!

वेनेज़ुएला पर अमेरिकी साम्राज्यवादी हमले की वजह

ट्रम्प ने वेनेज़ुएला के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो और उनकी पत्नी पर नशीले पदार्थों की तस्करी में शामिल होने का हास्यास्पद आरोप लगाया है। हालाँकि सभी जानते हैं कि यह इस शर्मनाक साम्राज्यवादी अपहरण को क़ानूनी जामा पहनाने की तिकड़म से ज़्यादा कुछ नहीं है। अमेरिका की कई संस्थाएँ ख़ुद इस बात की तस्दीक़ करती हैं कि अमेरिका में हो रही नशीले पदार्थों की तस्करी में वेनेज़ुएला की सरकार की कोई भूमिका नहीं है। यह आरोप बस अमेरिका में मादुरो पर मुक़दमे का ड्रामा करने के लिए लगाया गया है। मज़े की बात यह है कि अभी हाल ही में ट्रम्प ने एक अन्य लातिन अमेरिकी देश होन्दुराज़ के एक पूर्व राष्ट्रपति, जो कोकेन की तस्करी के मामले में अमेरिकी जेल में क़ैद था, को माफ़ी दे दी थी! इस प्रकरण से यह ज़ाहिर होता है कि ट्रम्प को अमेरिका में नशीले पदार्थों की तस्करी से कोई ख़ास दिक़्क़त नहीं है। वेनेज़ुएला पर हमले की असली वजह ट्रम्प ने ख़ुद बतायी जब उसने कहा कि हम वेनेज़ुएला के तेल संसाधनों पर नियन्त्रण करके उसे बेचेंगे और पैसा कमायेंगे।

ग़ौरतलब है कि वेनेज़ुएला में विश्व के किसी भी अन्य देश से ज़्यादा (300 अरब बैरल से अधिक) तेल के ज्ञात भण्डार हैं। तेल के अकूत भण्डार की ही वजह से अमेरिकी साम्राज्यवाद की गिद्ध दृष्टि वेनेज़ुएला पर रही है। दो दशक पहले वेनेज़ुएला के तत्कालीन राष्ट्रपति ह्यूगो चावेज़ द्वारा एक्सॉनमोबिल और शेवरॉन जैसी अमेरिकी तेल कम्पनियों को वेनेज़ुएला से निकाल बाहर करने के बाद से वेनेज़ुएला अमेरिकी राष्ट्रपतियों की आँख की किरकिरी बना हुआ था। मादुरो का अपहरण करवाकर ट्रम्प ने यह दिखला दिया है कि वह अमेरिकी साम्राज्यवादी हितों को साधने के लिए किसी भी अन्य अमेरिकी राष्ट्रपति से ज़्यादा बेशर्म कारनामे अन्जाम देने की कूव्वत रखता है।

वेनेज़ुएला पर अमेरिकी साम्राज्यवादी हमले को साम्राज्यवादी दुनिया में लगातार तीखी होती अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा की रोशनी में भी देखने की ज़रूरत है। अब इसमें कोई विवाद नहीं है कि पिछले दो दशकों के दौरान चीन व रूस के नेतृत्व में उभरे साम्राज्यवादी धड़े के सामने अमेरिकी साम्राज्यवाद आर्थिक दृष्टि से लगातार कमज़ोर पड़ता जा रहा है। मैन्युफ़ैक्चरिंग के क्षेत्र में चीन पहले ही अमेरिका को पछाड़ चुका है और वह इलेक्ट्रिक वाहनों, रोबोटिक्स, आर्टिफ़िशियल इण्टेलिजेंस और हाईटेक जैसे क्षेत्रों में भी अमेरिका को कड़ी टक्कर दे रहा है। अमेरिका और चीन के बीच जारी व्यापार युद्ध भी इस अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा में अमेरिका के पिछड़ने का ही नतीजा है। अमेरिकी साम्राज्यवाद के स्पष्ट रूप से आर्थिक पतन के बावजूद अमेरिका अभी भी दुनिया की सबसे बड़ी सैन्य शक्ति है। ट्रम्प अमेरिका की इस सैन्य शक्ति के सहारे अमेरिकी साम्राज्यवाद के पुराने दिन वापस लाने की कोशिशों में लगा हुआ है। हालाँकि उसे यह भी पता है कि अमेरिका पहले की तरह पूरी दुनिया में अपना वर्चस्व क़ायम करने की कूव्वत खो चुका है। इसीलिए ट्रम्प ने पूरी दुनिया के बजाय महज़ पश्चिमी गोलार्द्ध में अमेरिकी वर्चस्व को क़ायम करने का लक्ष्य बनाया है।

क़रीब दो महीने पहले ट्रम्प प्रशासन द्वारा जारी सुरक्षा सम्बन्धी एक दस्तावेज़ में ट्रम्प प्रशासन ने कुख़्यात मुनरो डॉक्ट्रिन को फिर से लागू करने की बात कही है जिसके तहत पूरे अमेरिकी महाद्वीप में किसी दूसरी ताक़त के वर्चस्व को ख़त्म कर निर्विवाद रूप से अमेरिकी साम्राज्यवादी वर्चस्व को क़ायम करने का लक्ष्य रखा गया है। ग़ौरतलब है कि पिछले दो दशकों के दौरान वेनेज़ुएला सहित लातिन अमेरिका के अन्य देशों में चीन ने बुनियादी ढाँचे सहित अर्थव्यवस्था के कई सेक्टरों में ज़बर्दस्त निवेश किया है और उन देशों के साथ बड़े पैमाने पर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये हैं। वेनेज़ुएला के तेल का सबसे बड़ा ख़रीदार भी चीन ही है। वेनेज़ुएला की चीन व रूस के साम्राज्यवादी धड़े से घनिष्ठता इस तथ्य से भी दिखती है कि वह अमेरिका के बरक्स ब्रिक्स देशों के गठबन्धन में भी शामिल होने की आकांक्षा रखता है और चीन के साथ व्यापार में अमेरिकी डॉलर के बजाय चीन की मुद्रा युआन का इस्तेमाल करता है जिसकी वजह से विश्व व्यापार में अमेरिकी डॉलर के वर्चस्व को चुनौती मिल रही है। यही नहीं वेनेज़ुएला सहित लातिन अमेरिका के कई देश रूस व चीन से हथियारों और सुरक्षा उपकरणों की ख़रीद भी करते आये हैं। इन सभी कारणों से ही वेनेज़ुएला और लातिन अमेरिका के अन्य देश ट्रम्प के निशाने पर हैं।

सवाल यह उठता है कि अमेरिकी साम्राज्यवादी हमले के बाद वेनेज़ुएला का भविष्य क्या होने वाला है। मादुरो के अपहरण के बाद हालाँकि अभी भी वहाँ मादुरो की पार्टी सत्ता में है, लेकिन कार्यकारी राष्ट्रपति डेल्सी रोड्रिग्ज़ के कुछ बयानों से इस बात के कयास लगाये जा रहे हैं कि यह पार्टी अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ व्यापक जन-लामबन्दी करने के बजाय उसके साथ समझौते का रुख़ अपना रही है। ट्रम्प प्रशासन ने भी यह कहा है कि वह वेनेज़ुएला की नयी सरकार के साथ काम कर रहा है और अमेरिकी कम्पनियाँ वेनेज़ुएला के तेल पर नियन्त्रण करना शुरू कर चुकी हैं। यदि यह सच है तो यह वेनेज़ुएला के भविष्य के लिए बेहद ख़तरनाक संकेत है। वैसे भी अमेरिका द्वारा वेनेज़ुएला पर इतनी आसानी से हमला करके उसके राष्ट्रपति को अगवा करवाने की घटना अपने आप में वहाँ की सरकार

(पेज 10 पर जारी)

बोलते आँकड़े चीख़ती सच्चाइयाँ

बेतहाशा बढ़ती ग़ैर-बराबरी

2025 के अन्त में आयी ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट बताती है कि मोदी सरकार के विकास के तमाम दावों के बावजूद सच यह है देश में भयानक ग़रीबी और ग़ैर-बराबरी लगातार बढ़ती जा रही है। विकास बेशक़ हो रहा है, लेकिन सिर्फ़ ऊपर बैठे मुट्ठीभर धनपशुओं का।

रिपोर्ट बताती है कि

● देश की कुल सम्पत्ति के लगभग 77 प्रतिशत पर देश के सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों का क़ब्ज़ा है, जिसमें सबसे ऊपर के एक प्रतिशत लोगों के पास 40-50 प्रतिशत से अधिक सम्पत्ति है।

● पिछले पाँच वर्षों के दौरान, भारतीय अरबपतियों की सम्पत्ति में 121 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई, जबकि देश की मेहनतकश आम जनता कोविड के बाद से चली आ रही परेशानियों से जूझ रही है।

● देश के सबसे धनी 21 अरबपतियों के पास 70 करोड़ भारतीयों के बराबर सम्पत्ति है।

● वर्ष 2021-22 में जनसंख्या के सबसे निचले 50 प्रतिशत हिस्से ने कुल जीएसटी के लगभग 64 प्रतिशत का भुगतान किया, जबकि सबसे ऊपर के 10 प्रतिशत ने केवल 3 प्रतिशत जीएसटी चुकाया।

● सबसे ऊपर की 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 58 प्रतिशत हिस्सा हड़प लेते हैं, जबकि सबसे नीचे के 50 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीयआय का सिर्फ़ 15 प्रतिशत हिस्सा मिलता है।

● एक दशक में अरबपतियों की सम्पत्ति लगभग 10 गुना बढ़ गयी। उनकी कुल सम्पत्ति भारत के पूरे केन्द्रीय बजट से भी ज़्यादा है।

● हर साल 6 करोड़ 30 लाख लोग दवा-इलाज के ख़र्च के कारण ग़रीबी में धकेल दिये जाते हैं – यानी लगभग हर सेकण्ड में दो लोग।

● ग़ैर-बराबरी का आलम यह है कि ग्रामीण भारत में न्यूनतम वेतन पाने वाले मज़दूर को एक साल में उतना कमाने में 941 साल लग जायेंगे, जितना एक प्रमुख भारतीय गारमेंट कम्पनी का सीईओ एक साल में कमा लेता है।

ऐसे में भगतसिंह की चेतावनी याद आती है जो उन्होंने अंग्रेज़ों की अदालत में अपने बयान में दी थी :

"यह भयानक असमानता और ज़बरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।"

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016